॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ दोहावली॥

गौस्वामी तुलसीदास कृत

॥ दोहावली ॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

श्री हनुमान चालीसा 16
दोहावली 27
राम-नाम-जप की महिमा 28
रामप्रेम के बिना सब व्यर्थ है 41
राम की और राम प्रेम की महिमा 44
तुलसी दास जी की अभिलाषा 48
राम प्रेम की महत्ता 49
राम विमुखता का कुफल 51
कल्याण का सुगम उपाय 55
श्रीरामजी की प्राप्ति का सुगम उपाय 56
रामप्रेम के लिये वैराग्य की आवश्यकता 57
शरणागति की महिमा 58
भक्ति का स्वरुप 59
कलियुग से कौन नहीं छला जाता 59
गोस्वामी जी की प्रेम-कामना 60
रामभक्त के लक्षण 62
उद्बोधन 63

शिव और राम की एकता 65
रामप्रेम की सर्वोत्कृष्टता 66
श्रीराम की कृपा 66
भगवान् की बाललीला 71
प्रार्थना 74
भजन की महिमा 74
रामसेवक की महिमा 80
राम महिमा 83
राम भजन की महिमा 83
राम प्रेम की प्राप्ति सुगम उपाय 84
राम प्राप्ति में बाधक 84
राम अनुकूलता में ही कल्याण है 85
श्रीराम की शरणागतवत्सलता 86
रामराज्य की महिमा 95
श्रीराम की दयालुता 97
श्रीराम की धर्म धुरन्धरता 98
श्रीसीता जी का अलौकिक प्रेम 98
श्रीराम की कीर्ति 99
रामकथा की महिमा 101

राममहिमा की अज्ञेयता 102
श्रीरामजीके स्वरुपकी अलौकिकता 102
ईश्वर-महिमा 103
श्रीरामजी की भक्तवत्सलता..... 103
सीता,लक्ष्मण और भरत जी के रामप्रेम की अलौकिकता..... 104
भरत-महिमा..... 105
लक्ष्मण महिमा 107
शत्रुघ्न महिमा..... 108
कौसल्या महिमा..... 108
सुमित्रा महिमा..... 109
सीता महिमा 109
रामचरित्र की पवित्रता..... 110
कैकेयी की कुटिलता 110
दशरथ महिमा 111
जटायु का भाग्य 113
रामकृपा की महत्ता 115
हनुमत्स्मरण की महत्ता 115
बाहुपीड़ा की शान्तिके लिये प्रार्थना 117
काशी महिमा..... 118

शंकर महिमा 119
शंकर जी से प्रार्थना 119
भगवल्लीला की दुर्ज्ञेयता 120
प्रेम में प्रपञ्च बाधक है 121
अभिमान ही बन्धन का मूल है 121
जीव और दर्पण के प्रतिबिम्ब की समानता 122
भगवन माया की दुर्ज्ञेयता 122
जीव की तीन दशाएँ 123
सृष्टि स्वप्नवत् है 123
हमारी मृत्यु प्रतिक्षण हो रही है 123
काल की करतूत 124
इन्द्रियों की सार्थकता 124
सगुण के बिना निर्गु णका निरूपण असम्भव है 125
निर्गुण की अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है 125
विषयासक्ति का नाश हुए बिना ज्ञान अधूरा है 126
विषयासक्त साधुकी अपेक्षा वैराग्यवान् गृहस्थ अच्छा है 127
साधु के लिये पूर्ण त्याग की आवश्यकता 127
संतोषपूर्वक घर में रहना उत्तम है 128
विषयों की आशा ही दुःख का मूल है 129

मोह-महिमा 129
बिषय-सुखकी हेयता 130
लोभ की प्रबलता 130
धन और ऐश्वर्यके मद तथा कामकी व्यापकता 131
माया की फौज 131
काम, क्रोध, लोभ की प्रबलता 132
काम,क्रोध,लोभके सहायक 132
मोहकी सेना 132
अग्नि, समुद्र, प्रबल स्त्री और कालकी समानता 133
स्त्री झगड़े और मृत्युकी जड़ है 133
गृहासक्ति ज्ञान में बाधक है 134
काम-क्रोधादि एक-एक अनर्थकारक है फिर सबकी तो बात ही क्या है 135
किसके मन को शान्ति नहीं मिलती ? 135
ज्ञानमार्ग की कठिनता 136
संतोष की महिमा 137
मायाकी प्रबलता और उसके तरनेका उपाय 137
गोस्वामी जी की अनन्यता 138
प्रेम की अनन्यता के लिए चातक का उदाहरण 138

एकांगी अनुराग के अन्य उदाहरण..... 151
मृग का उदाहरण..... 152
सर्प का उदाहरण..... 152
कमल का उदाहरण..... 153
मछली का उदाहरण..... 153
मयूरशिखा बूटी का उदाहरण..... 154
अनन्यता की महिमा..... 155
गाढ़े दिन का मित्र ही मित्र है..... 155
बराबरी का स्नेह दुःखदायक होता है..... 156
मित्रता में छल बाधक है..... 156
वैर और प्रेम अंधे होते है..... 157
दानी और याचक का स्वभाव..... 158
प्रेम और वैर ही अनुकुलता और प्रतिकूलता में हेतु हैं..... 158
स्मरण और प्रिय भाषण ही प्रेम की निशानी है..... 159
स्वार्थ ही अच्छाई-बुराईका मानदण्ड हैं..... 159
संसार में प्रेममार्ग के अधिकारी बिरले ही हैं..... 160
कलियुग में कपट की प्रधानता..... 160
कपट अन्त तक नहीं निभता..... 161
कुटिल मनुष्य अपनी कुटिलता को नहीं छोड़ सकता..... 161

स्वभाव की प्रधानता..... 162
सत्संग और असत्संगका परिणामगत भेद 163
सज्जन और दुर्जनका भेद..... 164
अवसर की प्रधानता 165
भलाई करना बिरले ही जानते हैं 166
संसारमें हित करनेवाले कम है 166
वस्तु ही प्रधान है, आधार नहीं..... 168
प्रीति और वैर की तीन श्रेणियाँ..... 169
जिसे सज्जन ग्रहण करते है,उसे दुर्जन त्याग देते हैं 169
प्रकृति के अनुसार व्यवहारका भेद भी आवश्यक हैं..... 169
अपना आचरण सभी को अच्छा लगता है..... 170
भाग्यवान् कौन है ?..... 170
साधुजन किसकी सराहना करते है 171
संग की महिमा..... 171
मार्ग-भेद से फल-भेद..... 175
भले के भला ही हो, यह नियम नहीं है 175
विवेक की आवश्यकता..... 176
कभी-कभी भले को बुराई भी मिल जाती है 178
सज्जन और दुर्जनकी परीक्षा के भिन्न-भिन्न प्रकार..... 178

नीच पुरुष की नीचता 179
सज्जन की सज्जनता 179
नीच निन्दा 181
सज्जन महिमा 181
दुर्जनो का स्वभाव 181
नीच की निन्दा से उत्तम पुरुषों का कुछ नहीं घटता 182
गुणोंका ही मूल्य है,दूसरोंके आदर-अनादरका नहीं 183
श्रेष्ठ पुरुषोंकी महिमाको कोई नहीं पा सकता 183
दुष्ट पुरुषों द्वारा की हुई निन्दा-स्तुतिका कोई मूल्य नहीं है 184
डाह करनेवालों का कभी कल्याण नहीं होता 184
दूसरों की निन्दा करनेवालों का मुहँ काला होता है 185
मिथ्या अभिमानका दुष्परिणाम 185
नीचा बनकर रहना ही श्रेष्ठ है 186
सज्जन स्वाभाविक ही पूजनीय होते है 186
भूप-दरबारकी निन्दा 187
छल-कपट सर्वत्र वर्जित है 187
जगत् में सब सीधोंको तंग करते है 189
दुष्ट-निन्दा 189
कपटी को पहचानना बड़ा कठिन है 193

कपटी से सदा डरना चाहिये..... 193
कपट ही दुष्टता का स्वरूप है..... 194
कपटी कभी सुख नहीं पाता 194
पाप ही दुःखका मूल है..... 195
अविवेक ही दुःखका मूल है..... 196
विपरीत बुद्धि बिनाश का लक्षण है 197
जोश में आकर अनधिकार कार्य करनेवाला पछताता है..... 199
समय पर कष्ट सह लेना हितकर होता है 199
भगवान् सबके रक्षक है..... 200
लड़ना सर्वथा त्याज्य है..... 200
क्षमा का महत्व..... 201
क्रोध की अपेक्षा प्रेमके द्वारा वश करना ही जीत है..... 202
वीतराग पुरुषों की शरण ही जगत् के जंजालसे बचनेका उपाय है 205
शूरवीर करनी करते है,कहते नहीं..... 206
अभिमान के बचन कहना अच्छा नहीं..... 206
दीनों की रक्षा करनेवाला सदा बिजयी होता है..... 207
नीति का पालन करनेवालेके सभी सहायक बन जाते हैं 207
सराहने योग्य कौन है..... 208
अवसर चूक जानेसे बड़ी हानि होती है 208

समय का महत्व 209
विपत्तिकाल के मित्र कौन है ?..... 210
होनहार की प्रबलता 211
परमार्थ प्राप्ति के चार उपाय 211
विवेक की आवश्यकता..... 212
विश्वास की महिमा..... 212
बारह नक्षत्र व्यापारके लिये अच्छे हैं 213
चौदह नक्षत्रों में हाथसे गया हुआ धन वापस नहीं मिलता..... 214
कौन-सी तिथियाँ कब हानिकारक होती हैं ? 215
कौन-सा चन्द्रमा घातक समझना चाहिये ?..... 215
किन-किन वस्तुओंका दर्शन शुभ है ? 216
सात वस्तुएँ सदा मङ्गलकारी हैं..... 216
श्रीरघुनाथजी का स्मरण सारे मङ्गलोंकी जड़ है..... 217
यात्रा के समय का शुभ स्मरण..... 217
वेद की अपार महिमा 218
धर्म का परित्याग किसी भी हालत में नही करना चाहिये 219
दूसरे का हित ही करना चाहिये, अहित नहीं 219
प्रत्येक कार्य की सिद्धि में तीन सहायक होते हैं 220
नीति का अवलम्बन और श्रीरामजी के चरणोंमें प्रेम ही श्रेष्ठ है..... 220

विवेकपूर्वक व्यवहार ही उत्तम है 221
नेम से प्रेम बड़ा है 222
किस-किस का परित्याग कर देना चाहिये 222
सात वस्तुओं को रस बिगड़नेके पहले ही छोड़ देना चाहिये 223
मन के चार कण्टक हैं 223
कौन निरादर पाते हैं ? 224
पाँच दुःखदायी होते है 224
समर्थ पापी के वैर करना उचित नहीं 225
शोचनीय कौन है 225
परमार्थ से विमुख ही अंधा है 226
मनुष्य आँख होते हुए भी मृत्यु को नहीं देखते 226
मूढ़ उपदेश नहीं सुनते 227
बार-बार सोचने की आवश्यकता 228
मूर्ख शिरोमणि कौन हैं ? 228
ईश्वरविमुख की दुर्गति ही होती है 229
जान-बूझकर अनीति करनेवाले को उपदेश देना व्यर्थ हैं 229
जगत् के लोगोंको रिझानेवाला मूर्ख हैं 230
प्रतिष्ठा दुःख का मूल है 231
भेड़ चाल का उदाहरण 232

ऐश्वर्य पाकर मनुष्य अपनेको निडर मान बैठते हैं..... 233
नौकर स्वामी की अपेक्षा अधिक अत्याचारी होते है..... 234
राजा को कैसा होना चाहिये ?..... 237
राजनीति..... 237
किसका राज्य अचल हो जाता है ?..... 240
आज्ञाकारी सेवक स्वामी से बड़ा होता है..... 245
त्रिभुवनके दीप कौन है ?..... 246
कीर्ति कर्म से ही होती है 246
बड़ो का आश्रय भी मनुष्य को बड़ा बना देता है 247
कपटी दानी की दुर्गति..... 247
अपने लोगों के छोड़ देनेपर सभी वैरी हो जाते है..... 247
साधन से मनुष्य ऊपर उठता है और साधन बिना गिर जाता है..... 248
सज्जनो को दुष्टों का संग भी मङ्गलदायक होता है..... 248
कलियुग में कुटिलताकी वृद्धि..... 249
आपस में मेल रखना उत्तम है..... 249
सब समय समतामे स्थित रहनेवाले पुरुष ही श्रेष्ठ हैं 250
जीवन किनका सफल है ? 250
पिता की आज्ञाका पालन सुखका मूल है..... 251
स्त्री के लिए पतिसेवा ही कल्याणदायिनी है..... 251

शरणागत का त्याग पाप का मूल है 252
कलियुग का वर्णन..... 253
चाहे जो भी घट जाय, भगवान् से प्रेम नहीं घटना चाहिये 259
कुसमय का प्रभाव..... 260
श्रीरामजी के गुणों की महिमा 260
कलियुग में दो ही आधार है..... 261
भगवत प्रेम ही सब मंगलों की खान है..... 261
दोहावली के दोहों की महिमा 263
श्री राम की दीनबन्धुता..... 264

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥
॥ श्री हनुमते नमः ॥

गोस्वामी तुलसीदास कृत

दोहावली

श्री हनुमान चालीसा

दोहा

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि ॥

श्री गुरु महाराज के चरण कमलों की धूलि से अपने मन रूपी दर्पण को पवित्र करके श्री रघुवीर के निर्मल यश का वर्णन करता हूं, जो चारों फल धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देने वाला है।

बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरौ पवन-कुमार।
बल बुद्धि विद्या देहु मोहि, हरहु कलेस बिकार ॥

हे पवन कुमार! मैं आपका सुमिरन करता हूं। आप तो जानते ही हैं कि मेरा शरीर और बुद्धि निर्बल है। मुझे शारीरिक बल, सद्बुद्धि एवं ज्ञान दीजिए और मेरे दुखों व दोषों का नाश कार दीजिए।

चौपाई

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर ॥

श्री हनुमान जी! आपकी जय हो। आपका ज्ञान और गुण अथाह है। हे कपीश्वर! आपकी जय हो! तीनों लोकों, स्वर्ग लोक, भूलोक और पाताल लोक में आपकी कीर्ति है।

राम दूत अतुलित बल धामा। अंजनि-पुत्र पवनसुत नामा ॥

हे श्री राम जी के दूत आपका बल अतुलनीय है। आपका अंजनी नंदन हैं तथा पवन पुत्र के रूप में विख्यात हैं।

महाबीर बिक्रम बजरंगी। कुमति निवार सुमति के संगी ॥

हे महावीर बजरंग बली!आप विशेष पराक्रम वाले है। आप कुमति को दूर करते है, और सुमति के साथी, सहायक है।

कंचन बरन बिराज सुबेसा। कानन कुंडल कुंचित केसा ॥

आप सुनहले रंग, सुन्दर वस्त्रों, कानों में कुण्डल और घुंघराले बालों से सुशोभित हैं।

हाथ बज्र और ध्वजा बिराजै। काँधे मूँज जनेऊ साजै ॥

आपके हाथ में वज्र रुपी गदा और ध्वजा विराजमान है और कन्धे पर मूंज का जनेऊ सुशोभित होता है।

संकर सुवन केसरीनंदन। तेज प्रताप महा जग बंदन ॥

हे शंकर के अवतार! हे केसरी नंदन आपके पराक्रम और महान यश की संसार भर में वन्दना होती है।

बिद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिबे को आतुर ॥

आप प्रकान्ड विद्या निधान है, गुणवान और अत्यन्त कार्य कुशल होकर श्री राम के काज करने के लिए आतुर रहते है।

प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया। राम लखन सीता मन बसिया ॥

आप श्री राम चरित सुनने में आनन्द रस लेते है। श्री राम, सीता और लखन आपके हृदय में बसे रहते है।

सूक्ष्म रुप धरि सियहि दिखावा। बिकट रुप धरि लंक जरावा ॥

आपने अपना बहुत सूक्ष्म रूप धारण करके सीता जी को दिखलाया और भयंकर रूप धारण करके लंका को जलाया।

भीम रुप धरि असुर सँहारे। रामचन्द्र के काज सँवारे ॥

आपने विकराल रूप धारण करके राक्षसों को मारा और श्री रामचन्द्र जी के उद्देश्यों को सफल कराया।

लाय संजीवन लखन जियाये। श्रीरघुबीर हरषि उर लाये ॥

आपने संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मण जी को जीवित किया जिससे श्री रघुवीर ने हर्षित होकर आपको हृदय से लगा लिया।

रघुपति कीन्ही बहुत बडाई। तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई ॥

श्री रामचन्द्र ने आपकी अत्यंत प्रशंसा की और कहा कि तुम मेरे भरत जैसे प्यारे भाई हो।

सहस बदन तुम्हरो जस गावैं। अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं ॥

श्री राम ने आपको यह कहकर हृदय से लगा लिया की तुम्हारा यश हजार मुख से सराहनीय है।

सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा। नारद सारद सहित अहीसा ॥

श्री सनक, श्री सनातन, श्री सनन्दन, श्री सनत्कुमार आदि मुनि ब्रह्मा आदि देवता नारद जी, सरस्वती जी, शेषनाग जी सब आपका गुण गान करते है।

जम कुबेर दिगपाल जहाँ ते। कबि कोबिद कहि सके कहाँ ते ॥

यमराज, कुबेर आदि सब दिशाओं के रक्षक, कवि विद्वान, पंडित या कोई भी आपके यश का पूर्णतः वर्णन नहीं कर सकते।

तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा। राम मिलाय राज पद दीन्हा ॥

आपने सुग्रीव जी को श्रीराम से मिलाकर उपकार किया, जिसके कारण वे राजा बने।

तुम्हरो मंत्र बिभीषण माना। लंकेश्वर भए सब जग जाना ॥

आपके उपदेश का विभिषण जी ने पालन किया जिससे वे लंका के राजा बने, इसको सब संसार जानता है।

जुग सहस्र जोजन पर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू ॥

जो सूर्य इतने योजन दूरी पर है कि उस पर पहुंचने के लिए हजार युग लगे। दो हजार योजन की दूरी पर स्थित सूर्य को आपने एक मीठा फल समझकर निगल लिया।

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माही। जलधि लाँघि गये अचरज नाहीं ॥

आपने श्री रामचन्द्र जी की अंगूठी मुंह में रखकर समुद्र को लांघ लिया, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है

दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥

संसार में जितने भी कठिन से कठिन काम हो, वो आपकी कृपा से सहज हो जाते है।

राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे ॥

श्री रामचन्द्र जी के द्वार के आप रखवाले है, जिसमें आपकी आज्ञा बिना किसी को प्रवेश नहीं मिलता अर्थात् आपकी प्रसन्नता के बिना राम कृपा दुर्लभ है।

सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहु को डरना ॥

जो भी आपकी शरण में आते है, उस सभी को आनन्द प्राप्त होता है, और जब आप रक्षक है, तो फिर किसी का डर नहीं रहता।

आपन तेज संहारो आपै। तीनो लोक हाँक ते काँपै ॥

आपके सिवाय आपके वेग को कोई नहीं रोक सकता, आपकी गर्जना से तीनों लोक कांप जाते है।

भूत पिसाच निकट नहि आवै। महाबीर जब नाम सुनावै ॥

जहां महावीर हनुमान जी का नाम सुनाया जाता है, वहां भूत, पिशाच पास भी नहीं फटक सकते।

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा ॥

वीर हनुमान जी! आपका निरंतर जप करने से सब रोग चले जाते है और सब पीड़ा मिट जाती है।

संकट तें हनुमान छुडावैं। मन क्रम बचन ध्यान जो लावै ॥

हे हनुमान जी! विचार करने में, कर्म करने में और बोलने में, जिनका ध्यान आपमें रहता है, उनको सब संकटों से आप छुड़ाते है।

सब पर राम तपस्वी राजा। तिन के काज सकल तुम साजा ॥

तपस्वी राजा श्री रामचन्द्र जी सबसे श्रेष्ठ है, उनके सब कार्यों को आपने सहज में कर दिया।

और मनोरथ जो कोई लावै। सोइ अमित जीवन फल पावै ॥

जिस पर आपकी कृपा हो, वह कोई भी अभिलाषा करें तो उसे ऐसा फल मिलता है जिसकी जीवन में कोई सीमा नहीं होती।

चारो जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा ॥

चारो युगों सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में आपका यश फैला हुआ है, जगत में आपकी कीर्ति सर्वत्र प्रकाशमान है।

साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे ॥

हे श्री राम के दुलारे! आप सज्जनों की रक्षा करते है और दुष्टों का नाश करते है।

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता ॥

आपको माता श्री जानकी से ऐसा वरदान मिला हुआ है, जिससे आप किसी को भी आठों सिद्धियां और नौ निधियां दे सकते है।

अष्ट सिद्धियाँ हैं:-

1. अणिमा- जिससे साधक किसी को दिखाई नहीं पड़ता और कठिन से कठिन पदार्थ में प्रवेश कर जाता है।
2. महिमा- जिसमें योगी अपने को बहुत बड़ा बना देता है।
3. गरिमा- जिससे साधक अपने को चाहे जितना भारी बना लेता है।
4. लघिमा- जिससे जितना चाहे उतना हल्का बन जाता है।
5. प्राप्ति- जिससे इच्छित पदार्थ की प्राप्ति होती है।
6. प्राकाम्य- जिससे इच्छा करने पर वह पृथ्वी में समा सकता है, आकाश में उड़ सकता है।
7. ईशित्व- जिससे सब पर शासन का सामर्थ्य हो जाता है।
8. वशित्व- जिससे दूसरों को वश में किया जाता है।

नव निधियां हैं

1. पद्म निधि,
2. महापद्म निधि,

3. नील निधि,
4. मुकुंद निधि,
5. नंद निधि,
6. मकर निधि,
7. कच्छप निधि,
8. शंख निधि
9. खर्व या मिश्र निधि।

राम रसायन तुम्हरे पासा। सदा रहो रघुपति के दासा ॥

आप निरंतर श्री रघुनाथ जी की शरण में रहते है, जिससे आपके पास राम नाम औषधि है।

तुम्हरे भजन राम को पावै। जनम जनम के दुख बिसरावै ॥

आपका भजन करने से श्री राम जी प्राप्त होते है और जन्म जन्मांतर के दुख दूर होते है।

अंत काल रघुबर पुर जाई। जहाँ जन्म हरि-भक्त कहाई ॥

अंत समय श्री रघुनाथ जी के धाम को जाते है और यदि फिर भी जन्म लेंगे तो भक्ति करेंगे और श्री राम भक्त कहलाएंगे।

और देवता चित्त न धरई। हनुमत सेइ सर्ब सुख करई ॥

हे हनुमान जी! आपकी सेवा करने से सब प्रकार के सुख मिलते है, फिर अन्य किसी देवता की आवश्यकता नहीं रहती।

संकट कटै मिटै सब पीरा। जो सुमिरै हनुमत बलबीरा ॥

हे वीर हनुमान जी! जो आपका सुमिरन करता रहता है, उसके सब संकट कट जाते है और सब पीड़ा मिट जाती है।

जय जय जय हनुमान गोसाई। कृपा करहु गुरुदेव की नाई ॥

हे स्वामी हनुमान जी! आपकी जय हो, जय हो, जय हो! आप मुझ पर कृपालु श्री गुरु जी के समान कृपा कीजिए।

जो सत बार पाठ कर कोई। छूटहि बंदि महासुख होई ॥

जो कोई इस हनुमान चालीसा का सौ बार पाठ करेगा वह सब बंधनों से छूट जाएगा और उसे परमानन्द मिलेगा।

जो यह पढै हनुमान चालीसा। होय सिद्धि साखी गौरीसा ॥

भगवान शंकर ने यह हनुमान चालीसा लिखवाया, इसलिए वे साक्षी है, कि जो इसे पढ़ेगा उसे निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी।

तुलसीदास सदा हरि चेरा। कीजै नाथ हृदय महँ डेरा ॥

हे नाथ हनुमान जी! तुलसीदास सदा ही श्री राम का दास है। इसलिए आप उसके हृदय में निवास कीजिए।

दोहा

पवनतनय संकट हरन, मंगल मूरति रुप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुर भूप ॥

हे संकट मोचन पवन कुमार! आप आनंद मंगलों के स्वरूप हैं। हे देवराज! आप श्री राम, सीता जी और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय में निवास कीजिए।

॥ इति ॥

सियावर रामचन्द्र की जय।
पवनसुत हनुमान की जय ॥
उमापति महादेव की जय।
सब संतन की जय ॥

॥ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ॥
॥ श्री हनुमते नमः ॥

दोहावली

ध्यान

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥

श्री राम के बायीं ओर श्रीजानकी जी विराजमान हैं तथा दाहिनी ओर श्री लक्ष्मण जी विराजमान हैं। ऐसे रूप में श्री राम, श्री लक्ष्मण जी तथा श्री सीता जी का ध्यान सम्पूर्ण रूप से कल्याणकारी है और तुलसीदास जी कहते हैं कि यह साक्षात् कल्पवृक्ष के समान मनमाना फल प्रदान करने वाला है

सीता लखन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास।
हरषत सुर बरषत सुमन सगुन सुमंगल बास ॥

श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी के साथ सुशोभित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी तुलसीदास जी को सुहाते हैं और उनकी

ऐसी शोभा देखकर, देवतागण हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं। प्रभु श्री रामचन्द्र जी का ऐसा सगुण ध्यान सुमङ्गल करने वाला है॥२॥

पंचबटी बट बिटप तर सीता लखन समेत।
सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत ॥

पंचवटी में वटवृक्ष के नीचे श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मण जी समेत बैठे हुए प्रभु श्रीराम जी की शोभा, तुलसीदास जी को सुहाती है। प्रभु श्री रामचन्द्र जी का ऐसा सगुण ध्यान समस्त सुमङ्गलों को प्रदान करने वाला है॥३॥

राम-नाम-जप की महिमा

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ॥

श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामजी चित्रकूटमें सदा निवास करते हैं। तुलसीदासजी का मत है कि वह
राम-नाम का जप जपने वालों को इच्छित फल प्रदान करते हैं ॥ ४॥

पय अहार फल खाइ जपु राम नाम षट मास।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥

तुलसीदास जी का कहना है यदि छः महीने तक केवल दूध का आहार ग्रहण करके अथवा फल खाकर राम-नाम का जप किया जाए तो सभी सुमंगल और सब सिद्धियाँ स्वत: ही प्राप्त हो जायँगी ॥ ५॥

राम नाम मनीदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेहुँ जौं चाहसि उजियार ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तुम अपने अन्दर और बाहर प्रकाश चाहते हो अर्थात इस लोक और परलोक को सुधारना चाहते हो तो मुखरूपी दरवाजे की देहली जीभ पर सदैव राम नाम रूपी मणि का दीप प्रज्वल्लित रख को अर्थात् जीभ से अहर्निश श्रीराम-नाम का जप करते रहो॥६॥

हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥

लसीदासजी कहते हैं कि हृदय में निर्गुण ब्रह्म का ध्यान, नेत्रों के समक्ष सगुण स्वरूप की सुन्दर झाँकी और जीभ से सुन्दर राम-नाम का जप करना ऐसा है मानो सोने की सुन्दर डिबिया में मनोहर रत्न सुशोभित हो। ॥ ७ ॥

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि।
तुलसी सुमिरहु रामको नाम सजीवन मूरि ॥

सगुण रूप के ध्यान में रुचि है नहीं और निर्गुण स्वरूप मन से अत्यंत दूर है अर्थात समझ से परे है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसी दशा में रामनाम का जप संजीवनी बूटी के समान है ॥८॥

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, राम नाम के दोनों अक्षरों में से एक 'र' तो रेफ के रूप में सब वर्णो के मस्तक पर मुकुट के समान विराजता है और दूसरा अक्षर 'म' अनुस्वार के रूप में सबके ऊपर मुकुट-मणि के समान सुशोभित होता है॥९॥

नाम राम को अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून ॥

श्रीरामजी का नाम अङ्क है और अन्य साधन शून्य हैं। अङ्क न रहनेपर तो कुछ भी हाथ में नहीं रहता, परंतु शून्य के पहले अङ्क आने पर वह दसगुने हो जाते हैं ॥१०॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥

श्रीराम नाम कल्पवृक्ष के समान है कलियुग में कल्याण का निवास है, जिसका जप करने से तुलसीदास भी भाँग से तुलसी के समान पवित्र हो गया ॥११॥

राम नाम जपि जीहँ जन भए सुकृत सुखसालि।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जीभ से रामनाम का जप करके लोग पुण्यात्मा और परम सुखी हो गये; परंतु इस नाम-जप में जो आलस्य करते हैं, उन्हें तो आज अथवा कल नष्ट हुआ ही समझो ॥ १२ ॥

नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुर बिनिआ की बानि ॥

तुलसी दास जी कहते हैं कि दीनों के बंधू श्रीराम का नाम ऐसा है, जो जपनेवाले को अपना मान कर राज पद तक देता है। परंतु यह मन ऐसा अविश्वासी है कि कूड़े के ढेर में पड़े दाने चुगने की आदत नहीं छोड़ता ॥१३॥

कासीं बिधि बसि तनु तजें हठि तनु तजें प्रयाग।
तुलसी जो फल सो सुलभ राम नाम अनुराग ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि काशी में निवास करते हुए शरीर त्यागने पर और तीर्थराज प्रयाग में हठ से शरीर छोड़ने पर जो फल प्राप्त होता है, वह रामनाम में अनुराग होने से सुगमतासे प्राप्त हो जाता है। ॥१४॥

मीठो अरु कठवति भरो रौंताई अरु छैम।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम ॥

पदार्थ मीठा भी हो और इच्छा अनुसार भी मिले, राज भोग भी प्राप्त हों और कुशल क्षेम भी बना भी रहे, स्वार्थ भी पूरा

हो तथा तथा परमार्थ भी सम्पन्न हो ऐसा होना केवल श्रीरामनाम के प्रेम से ही सुलभ हो सकती हैं। ॥१५॥

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन बिख्याति ॥

केवल राम नाम का भजन करने से अत्यंत नीच स्वभाव वालों ने भी सुन्दर कीर्ति को प्रपात कर लिया। स्वर्ग के राजमार्ग पर स्थित होने वाले अपवित्र वृक्ष भी त्रिभुवन में ख्याति प्राप्त कर लेते हैं। ॥१६॥

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रबेस।
राम नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन लोगों को लौकिक सुख सपने में भी प्राप्त नहीं होते और परमार्थ में जिनको प्रवेश भी नहीं मिलता, श्रीरामनामका स्मरण करनेसे उनके भी कठिन क्लेश दूर हो जाते हैं ॥१७॥

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥

संसार में मेरा-मेरा सब कहते हैं, परंतु किसी को कुछ नहीं पता वह स्वयं कौन है? और उसका अपना नाम क्या है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि अब इस रहस्य को समझकर मौन हो जाओ और श्रीराम नाम को जपो ॥१८॥

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जप नीच ॥

पहले अपने स्वरूप को पहचानो, फिर अपने ब्रह्म के स्वरूप को पहचानों। तदनन्तर अपने और ब्रह्म के बीच में रहने वाली माया को पहचानो। अरे नीच ! रामनाम का जप कर ॥१९॥

राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥

जो रामनाम का सहारा लिए बिना ही परमार्थ की आशा रखता है, वह तो मानो बरसते हुए बादल की बूंद को पकड़कर आकाशमें चढ़ना चाहता है ॥२०॥

तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि।
लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसारें हानि ॥

तुलसीदास जी निरन्तर बड़े आग्रह के साथ कहते हैं कि हे चित्त ! तू मेरी बात सुनकर उसे हितकारी समझ। राम नाम का जाप ही बड़ा भारी लाभ है और उसे न जपना ही सबसे बड़ी हानि है ॥ २१॥

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु ॥

तुलसीदासजी कहते हैं अनेकों जन्म की बिगड़ी हुई को तू आज अभी राम नाम का जप करके सुधार सकता है। केवल कुसंगति का त्याग कर और उनके नाम का जप कर । ॥२२॥

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम ॥

अत: प्रेम, विश्वास और विधि के साथ राम-राम जपो; तुलसीदासजी कहते हैं कि इससे तुम्हारा आदि, मध्य और अन्त तीनों में ही कल्याण होगा ॥२३॥

दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामनाम रुपी रस और रसना (जीभ) पति-पत्नी हैं, दाँत कुटुम्बी हैं, मुख सुन्दर घर है, श्री महादेव जी के प्यारे 'रा' और 'म'- यह दोनों अक्षर दो मनोहर बालक हैं और सहज स्नेह ही सम्पत्ति है ॥२४॥

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादव मास ॥

श्रीरघुनाथ जी की भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसीदास जैसे उत्तम सेवकगण धान हैं और रामनामके दो सुन्दर अक्षर सावन-भादों के महीने हैं ॥२५॥

राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥

श्रीराम नाम नृसिंह भगवान् हैं, कलियुग हिरण्यकशिपु है और श्रीरामनाम का जप करनेवाले भक्त जन प्रह्लाद जी के समान हैं, जिनकी वह देवताओं को दुःख देने वालों को मारकर रक्षा करता है ॥२६॥

राम नाम कलि कामतरु राम भगति सुरधेनु।
सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद पंकर रेनु ॥

रामनाम कलियुग कल्पवृक्ष के समान है, रामभक्ति कामधेनु है और श्रीसद्गुरु के चरणकमल की रज संसार में सभी मंगलों की जड़ है॥ २७॥

राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद ॥

राम नाम कलियुग में कल्पवृक्ष के समान है और सब प्रकार के श्रेष्ठ मंगलों का फल प्रदान करने वाला है। रामनाम का जप करने से समस्त सिद्धयाँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं जैसे करतल ध्वनि के साथ राम नाम का उच्चारण करने पर पद-पद पर परम आनन्द की प्राप्ति होती है ॥२८॥

जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास ॥

जैसे सारी धरती बीजमय है, सारा आकाश नक्षत्रों का निवास है, उसी प्रकार रामनाम ही सर्व धर्म मय है- तुलसीदास इस बात को जानते हैं ॥२९॥

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन ॥

जो समस्त कामनाओं का त्याग करके श्रीरामजी के भक्तिरस में डूबे हुए हैं, उन महात्माओं ने भी रामनाम के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत-सरोवरमें अपने मनको मछली बना रखा है ॥३०॥

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
राम चरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ॥

ब्रह्म और राम से भी बड़ा राम नाम है, वह वर देने वालों को भी वर देनेवाला है। रामचरित्र के सौ करोड़ श्लोकों में श्री शंकर जी ने केवल रामनाम को ही ग्रहण किया ॥३१॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ ॥

श्रीरघुनाथ जी ने तो शबरी, गिद्ध राज जटायु आदि अपने श्रेष्ठ सेवकों को ही सुगति दी; परंतु रामनामने तो असंख्य दुष्टों का उद्धार कर दिया। रामनाम की यह गुणगाथा वेदों में प्रसिद्ध है ॥३२॥

राम नाम पर नाम तें प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन सुमंगल कोस ॥

जिनका केवल श्री राम की नाम पर ही प्रेम, विश्वास और भरोसा है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह रामनाम का जप करते ही समस्त सद्गुणों और सुमंगलों का कोष बन जाता है॥३३॥

लंक बिभीषन राज कपि पति मारुति खग मीच।
लही राम सों नाम रति चाहत तुलसी नीच ॥

विभीषण ने लंका पायी, सुग्रीव ने राज्य प्राप्त किया, हनुमानजी ने सेवक की प्रतिष्ठा पायी और पक्षी जटायु ने देवदुर्लभ उत्तम मृत्यु प्राप्त की। परंतु यह नीच तुलसीदास तो उन प्रभु श्रीराम से केवल रामनाम में प्रेम ही चाहता है ॥३४॥

हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान।
रामनाम नित कहत हर गावत बेद पुरान ॥

रामनाम समस्त अमंगलों और पापों का हरण हरनेवाला तथा सर्वथा कल्याण करनेवाला है। इसी कारण श्रीमहादेव जी सर्वदा श्रीरामनाम का जप करते हैं और वेद-पुराण भी राम नाम का ही गुणगान करते हैं ॥ ३५ ॥

तुलसी प्रीति प्रतीति सों राम नाम जप जाग।
किएँ होइ बिधि दाहिनो देइ अभागेहि भाग ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेम और विश्वासके साथ राम-नाम जप रूपी यज्ञ करने से परमात्मा अनुकूल हो जाता है और अभागे मनुष्य को भी परम भाग्यवान् बना देता है ॥ ३६॥

जल थल नभ गति अमित अति अग जग जीव अनेक।
तुलसी तो से दीन कहँ राम नाम गति एक ॥

पृथ्वी, जल और आकाश में विविध प्रकार की शक्तियों से संपन्न अनेक प्रकार के असंख्य जीव हैं; परंतु हे तुलसीदास!

तुझ-सरीखे दीन के लिये तो रामनाम ही एकमात्र गति है ॥ ३७॥

राम भरोसो राम बल राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥

तुलसीदासजी यही माँगते हैं कि मुझे श्री राम का ही भरोसा रहे, श्री राम का ही बल प्राप्त होता रहे और उस रामनाम में ही विश्वास रहे, जिसके स्मरणमात्र से ही शुभ मंगल और कुशल की प्राप्ति होती है॥ ३८॥

राम नाम रति राम गति राम नाम बिस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥

जिसका रामनाम में प्रेम है, राम ही जिसकी एकमात्र गति हैं और रामनाम में ही जिसका विश्वास है,तुलसीदास जी कहते हैं उसके लिये रामनाम जप करने से ही दोनों लोकों शुभ, मंगल और कुशल है ॥ ३९ ॥

रामप्रेम के बिना सब व्यर्थ है

रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।

तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम ॥

जो श्री हरि का नाम नहीं जपते, उनकी जीभ सांप के समान हानि करने वाली और मुख उसके बिल के समान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसका राम में प्रेम नहीं है, उसके लिये तो विधाता भी विपरीत ही रहते हैं ॥४०॥

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥

जो श्री राम का सुमिरन नहीं करते वह हृदय फट जाएँ और आँखें फूट जायें। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस शरीरमें राम नाम के प्रभाव से रोमाञ्च नहीं होता वह जल जाय अर्थात् ऐसे अंग किस कामके ?) ॥४१॥

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पाँय।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम का सुमिरन करते समय, धर्मयुद्ध में शत्रु से युद्ध के समय, दान देते समय और गुरु के चरणों में प्रणाम करते समय, जिनके शरीर में विशेष

हर्ष के कारण रोमाञ्च नहीं होता, वे जगत् में व्यर्थ ही जीते हैं।॥ ४२ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम ॥

वह हृदय वज्रके समान कठोर है जो श्री हरि के गुणों को सुनकर द्रवित नहीं होता, और जो जीभ श्रीराम का गुणगान नहीं करती, वह जीभ मेढक की जीभ के समान व्यर्थ ही टर-टर करनेवाली है। ॥४३॥

स्रवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर जस।
ते नयना जनि देहु राम करहु बरु आँधरो ॥

जिन आँखों से श्रीरघुनाथ जी का यश सुनते ही द्रवित होकर प्रेम के आँसू न बहने लगें हे श्रीरामजी ! मुझे ऐसी आँखें मन दीजिए, भले ही मुझे अंधा बना दीजिये ॥ ४४ ॥

रहैं न जल भरि पूरि राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिये ॥

जो आँखें श्री राम का सुयश सुनते ही द्रवित होकर प्रेमजल से पूरी तरह भर न जायँ उन आँखोंमें तो मुट्ठियाँ भर-भरकर धूल झोंकनी चाहिये॥४५॥

प्रार्थना

बारक सुमिरत तोहि होहि तिन्हहि सम्मुख सुखद।
क्यों न सँभारहि मोहि दया सिंधु दसरत्थ के ॥

हे दयासागर! हे दशरथनन्दन ! जो एक बार भी तुम्हारा स्मरण करते हैं, तुम उनके सम्मुख होकर उन्हें सुख प्रदान करते हो; फिर तुम केवल मेरी ही सुधि क्यों नहीं लेते? ॥४६॥

राम की और राम प्रेम की महिमा

साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरे ॥

अन्य स्वामी तो सेवक का अपराध सुनकर ही क्रोधित हो जाते हैं परंतु श्रीरामचन्द्र जी तो सेवक के अपराधों को स्वयं

अपनी आँखों से देख लेने पर भी स्वप्नमें भी कभी उन पर ध्यान नहीं देते ॥४७॥

दोहा

तुलसी रामहि आपु तें सेवक की रुचि मीठि।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी को तो अपनी रुचि की अपेक्षा सेवक की रुचि अधिक मधुर लगती है, ऐसे श्री सीतापति के समान स्वामी से कैसे विमुख हुआ जा सकता है ॥४८॥

तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि।
सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके भीतरी और बाहरी दृष्टि होगी अर्थात् जो लौकिक और परलौकिक दोनों को समझता होगा, वह क्या केवट की रुचि की भी रक्षा करनेवाले कृपालु श्रीरामजी से कभी विमुख होगा? ॥ ४९ ॥

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान ॥

प्रभु श्रीरामजी तो पेड़ के नीचे विराजते थे और वानर पेड़ की डालियों पर बैठते थे, तब भी प्रभु ने उनको अपने ही समान बना लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीके समान शील के भण्डार स्वामी और कोई कहीं हैं ॥५०॥

उद्बोधन

रे मन सब सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि ॥

हे मन! तुम सभी से प्रीति तोड़कर श्रीराम से प्रेम कर। तुलसीदास तुझको रात-दिन यही सत्-शिक्षा देता है ॥५१॥

हरे चरहिं तापहि बरे फरें पसारहिं हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ॥

वृक्ष जब हरे होते हैं, तब पशु-पक्षी उन्हें चरने लगते हैं, सूख जानेपर लोग उन्हें जलाकर तापते हैं और फल लगने पर फल पाने के लिये लोग हाथ पसारने लगते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार जगत्में तो सब स्वार्थके ही मित्र हैं। परमार्थके मित्र तो केवल श्री रघुनाथ जी ही हैं ॥५२॥

स्वारथ सीता राम सों परमारथ सिय राम।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम ॥

श्रीसीताराम से ही तेरे सब स्वार्थ सिद्ध हो जायेंगे और श्रीसीताराम ही तेरे परमार्थ हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि फिर तेरा दूसरे के दरवाजे पर क्या काम है? ॥५३॥

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥

जब एक स्वामी के ओर से ही तुझे सब स्वार्थ और परमार्थ सुलभता से प्राप्त हो सकते हैं, तब हे तुलसी ! तुझे दूसरे के द्वार पर जा कर दीनता दिखलाना उचित नहीं है। ॥५४॥

तुलसी स्वारथ राम हित परमारथ रघुबीर।
सेवक जाके लखन से पवनपूत रनधीर ॥

तुलसीदासजी का तो स्वार्थ भी राम हैं और परमार्थ भी श्रीरघुनाथ जी ही हैं, जिनके श्रीलक्ष्मणजी और रणधीर श्रीहनुमान जी जैसे सेवक हैं ॥ ५५॥

ज्यों जग बैरी मीन को आपु सहित बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि ॥

जैसे जल को छोड़कर सारा जगत् ही मछली का वैरी है, वैसे ही हे तुलसीदास! एक श्रीरघुनाथजी के बिना तुम्हारी अपनी भी यही गति है ॥५६॥

तुलसी दास जी की अभिलाषा

राम प्रेम बिनु दूबरो राम प्रेम हीं पीन।
रघुबर कबहुँक करहुगे तुलसिहि ज्यों जल मीन ॥

हे श्रीरघुनाथजी ! आप इस तुलसीदास को कब ऐसा करेंगे जब वह श्रीराम के प्रेम के बिना मछली की भाँति दुबला जाए और श्रीराम के प्रेम से ही पुष्ट हो जाए ॥५७॥

राम प्रेम की महत्ता

राम सनेही राम गति राम चरन रति जाहि।
तुलसी फल जग जनम को दियो बिधाता ताहि ॥

जो किवल श्रीराम के ही प्रेमी है, श्रीराम ही जिनकी गति हैं और श्रीराम के ही चरणों में जिसकी प्रीति है तुलसीदास जी कहते हैं केवल उन्ही को विधाता ने जगत् में जन्म लेने का यथार्थ फल प्रदान दिया है। ॥५८॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥

अपनी और अपने सम्बन्धी समस्त पदार्थों की अपेक्षा जिसे श्रीसीतारामजी अधिक प्रिय हैं, तुलसीदास के शरीर का चमड़ा ऐसे प्रेमी भक्तों के चरणों की जूतियों में लगे तो उसका सौभाग्य है ॥ ५९॥

स्वारथ परमारथ रहित सीता राम सनेहँ।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एहँ ॥

स्वार्थ और परमार्थ की इच्छा से रहित जो श्रीसीताराम के प्रति निष्काम और अनन्य प्रेम है, वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-चारों फलों का भी महान् फल है यह मेरा मत है। ॥६०॥

जे जन रूखे बिषय रस चिकने राम सनेहँ।
तुलसी ते प्रिय राम को कानन बसहि कि गेहँ ॥

जो जन विषय-रस से विरक्त हैं और राम प्रेम के रसिक हैं, वही श्रीरामजी के प्यारे हैं फिर चाहे वह वन में रहें या घर में ॥६१॥

जथा लाभ संतोष सुख रघुबर चरन सनेह।
तुलसी जो मन खूँद सम कानन बसहुँ कि गेह ॥

जो कुछ मिल जाय उसी में जिनको संतोष और सुख प्राप्त होता है और जिनके मन में श्रीरघुनाथजी के चरणों का अचल प्रेम भरा है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह वन में रहें अथवा घर में उनके लिये दोनों एक समान हैं ॥६२॥

तुलसी जौं पै राम सों नाहिन सहज सनेह।
मूँड़ मुड़ायो बादिहीं भाँड़ भयो तजि गेह ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि श्रीरामचन्द्र जी से स्वाभाविक सहज प्रेम नहीं हुआ तो फिर व्यर्थ ही मूंड़ मुंडाया-साधु बने और घर छोड़कर भाँड़ बने ॥६३ ॥

राम विमुखता का कुफल

तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और।
सुख संपति की का चली नरकहुँ नाहीं ठौर ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीरघुनाथ जी को छोड़कर किसी अन्य का भरोसा करता है—सुख-सम्पत्ति की तो बात ही दूर है, उसे नरक में भी जगह नहीं मिलती ॥६४॥

तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत।
अंत फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहरि और श्रीशंकरजी को छोड़कर जो पामर भूतों की पूजा करते हैं, वेश्या के पुत्रों की तरह वह सभी अन्त में दुर्दशा को प्राप्त होंगे ॥६५॥

सेये सीता राम नहिं भजे न संकर गौरि।
जनम गँवायो बादिहीं परत पराई पौरि ॥

यदि श्री सीतारामजी की सेवा नहीं की और श्री गौरीशंकर का भजन नहीं किया तो पराये दरवाजेपर पड़े रहकर वृथा ही जन्म गँवाया ॥६६॥

तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गए सदल सकुल कुरुराज ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहरि का अपमान करने से केवल हानि ही होती है और समाज मिट जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का अपमान करने से राज्य करते हुए कुरुराज अपने कुटुम्ब के सहित धूलमें मिल गये ॥ ६७॥

तुलसी रामहि परिहरें निपट हानि सुन ओझ।
सुरसरि गत सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अरे पण्डित ! सुनो, श्रीरामजी को छोड़ देनेसे अत्यन्त हानि होती है। श्रीगंगा जी का वही जल गंगा जी से अलग हो जाने पर मदिरा के समान हो जाता है ॥ ६८॥

राम दूरि माया बढ़ति घटति जानि मन माँह।
भूरि होति रबि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥

श्रीराम से दूर रहनेपर माया बढ़ती है और जब श्रीराम मन में विराजित होते हैं, तब घट जाती है जैसे सूर्य को दूर देखकर छाया लम्बी हो जाती है और सूर्य जब सिरपर आ जाता है तब वह ठीक पैरोंके नीचे आ जाती है॥ ६९॥

साहिब सीतानाथ सों जब घटिहै अनुराग।
तुलसी तबहीं भालतें भभरि भागिहैं भाग ॥

जब स्वामी श्रीजानकीनाथजी से प्रेम घट जायगा, तब उस आदमी के मस्तकसे सौभाग्य तुरंत ही विकल होकर भाग जायगा। ॥ ७० ॥

करिहौ कोसलनाथ तजि जबहिं दूसरी आस।
जहाँ तहाँ दुख पाइहौं तबहीं तुलसीदास ॥

कौशल नरेश श्रीरामजी को छोड़कर यदि कोई दूसरी आशा करोगे, तब तुलसीदासजी कहते हैं कि जहाँ-तहाँ दुःख ही प्राप्त करोगे ॥७१ ॥

बिंधि न ईंधन पाइऐ सागर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुबीरो ॥

यदि श्रीरघुनाथ जी प्रतिकूल हो जायँ तो फिर विन्ध्याचल में भी ईंधन नहीं मिलेगा, समुद्र में जल नहीं जुड़ सकेगा और धनपति कुबेर के घर भी फाका पड़ जायगा ॥७२॥

बरसा को गोबर भयो को चहै को करै प्रीति।
तुलसी तू अनुभवहि अब राम बिमुख की रीति ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अब श्रीरामजी से विमुख मनुष्यकी गति का तो अनुभव कर; वह बरसात का गोबर हो जाता है अर्थात न तो लीपने के काममें आता है, और न पाथने के तब उसे कौन चाहेगा? ॥७३ ॥

सबहिं समरथहि सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय तुलसी कहा बिचारि ॥

समाज में जो समर्थ पुरुष हैं उन्हें तो सभी को प्रदान करने वाला प्रिय लगता है और असमर्थ को केवल अपना भला करनेवाला प्रिय होता है। तुलसीदास जी विचारकर ऐसा

कहते हैं कि भगवान् श्रीराम कभी किसी को भी प्रिय नहीं लगते॥७४॥

तुलसी उद्यम करम जुग जब जेहि राम सुडीठि।
होइ सुफल सोइ ताहि सब सनमुख प्रभु तन पीठि ॥

जिसपर श्रीराम की सुदृष्टि होती है, उसके सब उद्यम और कर्म सफल हो जाते हैं और वह शरीर की ममता छोड़कर प्रभु के सम्मुख हो जाता है॥७५॥

राम कामतरु परिहरत सेवत कलि तरु ठूँठ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ ॥

जो मनुष्य श्रीरामरूपी कल्पवृक्ष को छोड़कर सूखे ढूंठ-जैसे कलियुग रूपी वृक्ष का सेवन करते हैं और उससे स्वार्थ और परमार्थ सिद्ध करने की कामना करता है उसके सभी मनोरथ व्यर्थ होते हैं ॥७६ ॥

कल्याण का सुगम उपाय

निज दूषन गुन राम के समुझें तुलसीदास।
होइ भलो कलिकाल हूँ उभय लोक अनयास ॥

अपने दोषों तथा श्रीराम के गुणों को समझ लेने पर तुलसी दास जी कहते हैं कि इस कलिकाल में भी मनुष्य को दोनों लोकों में सहज ही कल्याण प्राप्त हो जाता है। ॥७७॥

कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ में रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि ॥

या तो तुम्हें राम प्रिय लगने लगें या प्रभु श्रीराम का तू प्रिय बन जा। तुलसीदासजी कहते हैं कि दोनों में से जो तुझे जो सुगम लगे, तुझे वही करना चाहिये। ॥७८॥

तुलसी दुइ महँ एक ही खेल छाँड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों के ममता परहेलु ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सब छोड़कर तू छल छोड़ कर एक ही खेल को अपना ले, या तो केवल राम से ही ममता कर या ममता का सर्वथा त्याग कर दे॥७९॥

श्रीरामजी की प्राप्ति का सुगम उपाय

निगम अगम साहेब सुगम राम साँचिली चाह।

अंबु असन अवलोकिअत सुलभ सबै जग माँह ॥

जो हमारे स्वामी वेदों के लिये भी अगम हैं, वही ही श्रीराम सच्ची चाह से ऐसे सुगम हो जाते हैं जैसे जल और अन्न जगत् में सबके लिये सुलभ देखे जाते हैं ।। ८० ॥

सनमुख आवत पथिक ज्यों दिएँ दाहिनो बाम।
तैसोइ होत सु आप को त्यों ही तुलसी राम ॥

जिस प्रकार सामने आते हुए पथिक को आप दायें-बायें जिस ओर देकर चलेंगे, उसी प्रकार वह भी आपके दायें-बायें हो जायगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे ही श्रीराम का भी जो जिस प्रकार भजन करता है श्रीराम भी उसका उसी प्रकार भजन करते हैं ॥८१॥

रामप्रेम के लिये वैराग्य की आवश्यकता

राम प्रेम पथ पेखिऐ दिएँ बिषय तन पीठि।
तुलसी केंचुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ॥

श्रीराम के प्रेम का पथ देखते हुए विषयों की ओर सैदेव पीठ रखनी चाहिए। तुलसीदासजी कहते हैं कि साँप भी केंचुल छोड़ देने पर दिखाई देने लगता है ॥८२॥

तुलसी जौ लौं बिषय की मुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जब तक विषयों की मिथ्या माधुरी मीठी लगती है, तब तक हजार अमृत के समान मधुर होने पर भी रामभक्ति बिलकुल फीकी प्रतीत होती है ॥ ८३ ॥

शरणागति की महिमा

जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल।
तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल ॥

हे कोसलपति श्रीरामजी ! जैसा भी भला-बुरा है यह तुलसीदास केवल आपका ही है। यदि यह सत्य है तो तीनों लोकों और तीनों कालों में इसका कल्याण-ही-कल्याण है ॥८४॥

है तुलसी कें एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि लोग मुझको अवगुणों का भण्डार कहते हैं, परंतु मुझमें एक गुण यह है कि मुझे आपका पूरा भरोसा है; इसी से हे रामजी आपका मुझ पर प्रसन्न हो जाना योग्य है ॥८५॥

भक्ति का स्वरुप

प्रीति राम सों नीति पथ चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥

श्रीराम से प्रेम करना और राग और क्रोध को जीतकर नीति के मार्ग पर चलना, तुलसीदासजी कहते हैं कि संतों के मत से भक्ति की यही रीति है। ॥८६॥

कलियुग से कौन नहीं छला जाता

सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति ॥

जिनके वचन सत्य होते हैं, मन निर्मल होता है और क्रिया कपटरहित होती है, तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे श्रीराम के भक्तों को कलियुग कभी धोखा नहीं दे सकता ॥८७॥

तुलसी सुखी जो राम सों दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ॥

जो मनुष्य श्रीरामजी से अपने को सब प्रकारसे सुखी होना और अपने कर्मों से दुःखी होना मानता है, जिसके कर्म, वचन और मन उचित हैं, उसको कलियुग धोखा नहीं दे सकता ॥८८॥

गोस्वामी जी की प्रेम-कामना

नातो नाते राम कें राम सनेहँ सनेहु।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु ॥

मेरा नाता यदि किसी से हो तो केवल श्री राम से ही हो और यदि किसी से प्रेम हो तो श्रीराम से ही हो, तुलसीदास हाथ जोड़कर वरदान माँगता है कि हे शिवजी ! मुझे जन्म-जन्मान्तरों में केवल यही प्राप्त हो ॥८९॥

सब साधनको एक फल जेहिं जान्यो सो जान।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं राम धरें धनु बान ॥

सब साधनों का यही एकमात्र फल है कि जिस भी प्रकार से हो, धनुष-बाण धारण करने वाले श्रीरामजी मन-मन्दिर में निवास करने लगे। जिसने इस रहस्यको जान लिया, वही यथार्थ जाननेवाला है ॥९०॥

जौं जगदीस तौ अति भलो जौं महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ॥

समस्त जगत् के स्वामी हैं तो बहुत अच्छी बात है, और यदि वह केवल पृथ्वी के स्वामी हैं तो भी मेरा बड़ा भाग्य है। तुलसीदास तो केवल जन्मभर श्रीराम के चरणकमलों में प्रेम ही चाहता है ॥९१॥

परौ नरक फल चारि सिसु मीच डाकिनी खाउ।
तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाउ ॥

मैं चाहे नरक में पड़ूँ, मेरे चारों फल रूपी बालकों को चाहे मृत्युरूपी डाकिनी खा जाय, तुलसीदासजी कहते हैं,

श्रीराम जी से प्रेम करने का और कुछ भी जो फल हो चाहे वह भी जल जाए किंतु फिर भी मैं तो श्रीराम के चरणों में प्रेम ही करता रहूँगा ॥९२॥

रामभक्त के लक्षण

हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ।
उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि रामभक्त का ऐसा सहज भाव होना चाहिये कि श्रीराम में उसका प्रेम हो, मित्रों से मैत्री हो, शत्रुओं से शत्रु का त्याग कर दे, किसी में पक्षपात न हो और सबसे सरलता का व्यवहार हो ॥९३॥

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जिनकी श्रीराम में ममता और सब संसार में समता है, जिनका किसी के प्रति राग, द्वेष, दोष और दुःख का भाव नहीं है, श्रीराम के ऐसे भक्त भवसागर से पार हो चुके हैं ॥९४॥

उद्बोधन

रामहि डरु करु राम सों ममता प्रीति प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम को भएँ हारेहूँ जीति ॥

श्रीराम से डरो, श्रीराम में ही ममता, प्रेम और विश्वास करो। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम का कपटरहित सेवक होकर रहने पर हारने में भी जीत ही है।॥९५॥

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष।
होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि तुम कृपालु श्रीराम से अपने सब गुण-दोष दिल खोलकर सुना दो। इससे तुम्हारी दीनता कम हो जायगी और संतोष परम पुष्ट हो जायगा ॥९६॥

सुमिरन सेवा राम सों साहब सों पहिचानि।
ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि ॥

श्रीराम का सुमिरन बना रहे, श्रीराम की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो और श्रीराम जैसे स्वामी को तत्त्व से पहचान लिया जाए। ऐसे परम लाभ के लिये भी जी नहीं ललचाता,

तुलसीदासजी कहते हैं कि उसके हित की सर्वथा हानि ही है। ॥९७॥

जानें जानन जोइऐ बिनु जाने को जान।
तुलसी यह सुनि समुझि हियँ आनु धरें धनु बान ॥

जानने पर ही जानना देखा जाता है, बिना जाने कौन जान सकता है? तुलसीदास जी कहते हैं कि यह बात सुनकर और समझकर धनुष-बाण धारण किये हुए श्रीराम को अपने हृदय में ले आओ। ॥९८॥

करमठ कठमलिया कहैं ग्यानी ग्यान बिहीन।
तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो राम दुआरें दीन ॥

कर्म काण्डी लोग तो मुझे काठ की माला धारण करनेवाला 'कठमलिया' कहते हैं, ज्ञानी मुझको ज्ञानविहीन बताते हैं तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं तो तीनों मार्गों को छोड़ कर दीन होकर श्रीरामचन्द्रजी के दरवाजे पर जा पड़ा हूँ। ॥९९॥

बाधक सब सब के भए साधक भए न कोइ।
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ ॥

इस जगत् में तो सब लोग सबके बाधक ही होते हैं, साधक कोई किसी का नहीं है! तुलसीदासजी कहते हैं कि कृपालु श्रीराम जी से ही भला होता है सो होता है। ॥१००॥

शिव और राम की एकता

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥

जिनको शिवजी प्रिय हैं, किंतु जो मुझसे विरोध रखते हैं अथवा जो शिवजी से विरोध रखते हैं और मेरे दास हैं, वह मनुष्य एक कल्प तक घोर नरक में पड़े रहते हैं अर्थात श्री शंकर जी में और श्रीरामजी में कोई ऊँच-नीच का भेद नहीं मानना चाहिये॥१०१॥

बिलग बिलग सुख संग दुख जनम मरन सोइ रीति।
रहिअत राखे राम कें गए ते उचित अनीति ॥

संसार से दूर-दूर रहने में ही सुख है, आसक्ति में ही दुःख है। यही बात जन्म और मृत्यु में भी है। श्रीराम रखना चाहते हैं, इसीलिये आसक्तिरहित होकर यहाँ रहना चाहिये।

अन्यथा इस अनीति से जो चले गये, उन्होंने ही उचित किया ॥१०२॥

रामप्रेम की सर्वोत्कृष्टता

जाँय कहब करतूति बिनु जायँ जोग बिन छेम।
तुलसी जायँ उपाय सब बिना राम पद प्रेम ॥

बिना करनी किये केवल कथनमात्र वैसे ही व्यर्थ है, जैसे बिना क्षेम के योग व्यर्थ है। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम के चरणों में प्रेम हुए बिना सब साधन व्यर्थ हैं ॥१०३॥

लोग मगन सब जोगहीं जोग जाँय बिनु छेम।
त्यों तुलसीके भावगत राम प्रेम बिनु नेम ॥

लोग सब योग में ही लगे हैं, परंतु क्षेम का उपाय किये बिना योग व्यर्थ है। इसी प्रकार तुलसीदासजी के विचारसे श्रीरामजी के प्रेम बिना सभी नियम व्यर्थ हैं। ॥१०४॥

श्रीराम की कृपा

राम निकाई रावरी है सबही को नीक।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥

हे रामजी ! आपकी भलाई से सभी का भला है। अर्थात् आपके कल्याणकारी स्वभाव से सभी का कल्याण होने वाला है। यदि यह बात सत्य है तो तुलसीदास का भी सदा कल्याण ही है॥१०५॥

तुलसी राम जो आदर्यो खोटो खरो खरोइ।
दीपक काजर सिर धर्यो धर्यो सुधर्यो धरोइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसको श्रीरामने आदर दे दिया वह बुरा भी भला, सदा भला ही है। दीपक ने जब काजल को अपने सिर पर धारण कर लिया तो फिर कर ही लिया। ॥१०६॥

तनु बिचित्र कायर बचन अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भए पच्छधर ताते कह सब मोर ॥

मोर का रंग-बिरंगा विचित्र शरीर है, कायर की सी उसकी बोली है, साँप उसका भोजन है और कठोर मन है। तुलसीदासजी कहते हैं कि इतने अवगुण होने पर भी श्री

हरि ने उसकी पाँखों को सिर पर धारण कर लिया और सभी उसे 'मोर, मोर' कहने लगे ॥१०७॥

लहइ न फूटी कौंड़िहू को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीब निवाज ॥

जिसको एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती थी, उसको भला कौन चाहता और किसलिये चाहता। उसी तुलसी को दीन बन्धु श्रीराम ने आज महँगा कर दिया ॥१०८॥

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय ॥

पहले मैं घर-घर जा कर टुकड़े माँगता था। अब राजा भी आकर मेरे पैर पूजते हैं, तब मैं राम से विमुख था अब मैं राम के सम्मुख हूँ ॥१०९॥

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान।
बैर बालि सुग्रीव कें कहा कियो हनुमान ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम जी की शुभदृष्टि से निर्बल भी बलवान् हो जाते हैं। सुग्रीव और बालि के वैर में हनुमानजी ने भला क्या किया? ॥ ११०॥

तुलसी रामहु तें अधिक राम भगत जियँ जान।
रिनिया राजा राम भे धनिक भए हनुमान ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम के भक्त को रामजी से भी अधिक समझो। राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्र जी स्वयं ऋणी हो गए और उनके भक्त श्रीहनुमान् जी उनके साहूकार बन गये ॥१११॥

कियो सुसेवक धरम कपि प्रभु कृतग्य जियँ जानि।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि ॥

श्री हनुमान जी ने केवल एक अच्छे सेवक का धर्म ही निभाया। परंतु यह जानकर देवताओं को भी वर देने वाले श्री राम हृदय से ऐसे कृतज्ञ हुए कि हाथ जोड़कर हनुमानजी के सामने खड़े हो गये ॥११२॥

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरुप ॥

भक्त वत्सल श्रीरामजी ने भक्तों के लिये ही राजा का शरीर धारण किया और साधारण मनुष्यों की भाँति परम पवित्र लीलाएँ कीं ॥ ११३॥

ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार ॥

जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से परे अजन्मा तथा माया, मन और गुणों के पार हैं, वही सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रेष्ठ नरलीला करते हैं ॥ ११४ ॥

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥

जिन कृपासिन्धु भगवान् ने भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को और बलवान् मधु-कैटभ को भी मारा था, वही भगवान् रामरूप में अवतरित हुए हैं। ॥११५॥

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ॥

शुद्ध, सच्चिदानन्दकन्दस्वरूप सूर्यकुल के ध्वजारूप भगवान् श्रीराम जी मनुष्यों के समान ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसार-सागर से पार करने के लिये पुल के समान हैं ॥११६॥

भगवान् की बाललीला

बाल बिभूषन बसन बर धूरि धूसरित अंग।
बालकेलि रघुबर करत बाल बंधु सब संग ॥

श्रीरामजी बालोचित सुन्दर गहने-कपड़ों से सजे हुए हैं; उनके श्रीअङ्ग धूल से लिपटे हुए हैं, सब बालकों तथा भाइयों के साथ वह बालकों के समान खेल खेल रहे हैं ॥ ११७ ॥

अनुदिन अवध बधावने नित नव मंगल मोद।
मुदित मातु पितु लोग लखि रघुबर बाल बिनोद ॥

श्रीअयोध्याजी में रोज बैधैया बजती हैं, नित नये-नये मङ्गलाचार और आनन्द मनाये जाते हैं। श्रीरघुनाथजी की बाललीला देखकर माता-पिता तथा सब लोग अत्यंत प्रसन्न रहते हैं। ॥११८॥

राज अजिर राजत रुचिर कोसलपालक बाल।
जानु पानि चर चरित बर सगुन सुमंगल माल ॥

कौसलपति महाराज दशर थके लाड़ले लाल राजमहल के सुन्दर आँगन में हाथों और घुटनों के बल चलते हुए ऐसी उत्तम-उत्तम लीलाएँ कर रहे हैं जो मानो सब शुभ गुण और सुमंगलों की माला ही है।॥ ११९॥

नाम ललित लीला ललित ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित ललित अनुज सिसु साथ ॥

श्रीरघुनाथजी का नाम, उनकी लीला, उनका सुन्दर रूप, उनके वस्त्र, उनके आभूषण सभी अत्यन्त सुन्दर हैं और सुन्दर छोटे भाई तथा अयोध्यावासी बालक उनके साथ हैं। ॥१२०॥

राम भरत लछिमन ललित सत्रु समन सुभ नाम।
सुमिरत दसरथ सुवन सब पूजहिं सब मन काम ॥

श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ऐसे जिनके सुन्दर और शुभ नाम हैं, दशरथजी के इन सब सुपुत्रों का स्मरण करते ही सारी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं ॥१२१॥

बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल।
तुलसी मन मानस बसत मंगल मंजु मराल ॥

कौशल नरेश श्री दशरथ जी के बालक श्रीराम जी सेवकों की रक्षा करनेवाले तथा बड़े ही कृपालु हैं। वह तुलसीदास के मन रूपी मानसरोवर में कल्याणरूप सुन्दर हंस के समान निवास करते हैं ॥१२२॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ॥

भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवताओं के हित के लिये कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य शरीर धारणकर लीलाएँ करते हैं, जिनके सुनने मात्र से संसार के जंजाल कट जाते हैं। ॥१२३॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥

देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणों के लिये भगवान् अपनी इच्छा से ही अवतार धारण करते हैं। वहाँ सगुण स्वरूप के उपासक भक्तगण सब प्रकार के मोक्षों का परित्याग कर उनके साथ रहते हैं ॥ १२४ ॥

प्रार्थना

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥

हे परमानन्दस्वरूप, कृपा के धाम, मन की कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीरामचन्द्रजी ! आप हमें अपनी अविचल प्रेमा भक्ति दीजिये ॥ १२५॥

भजन की महिमा

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥

जल के मथने से भले ही घी उत्पन्न हो जाए तथा बालू के पेरने से चाहे तेल निकल आए; परंतु श्रीहरि के भजन बिना भवसागर से पार नहीं हुआ जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है ॥ १२६॥

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम सब काम तजि अस बिचारि मन माहिं ॥

श्रीहरि की माया के द्वारा रचे हुए दोष और गुण बिना हरि भजन के नष्ट नहीं होते। ऐसा मन में विचारकर सब कामनाओं को त्यागकर श्रीरामजी का भजन ही करना चाहिए। ॥१२७॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥

जो चेतन को जड़ कर देते हैं और जड़ को चेतन, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजी को जो भी जीव भजते हैं वह धन्य हैं। ॥१२८॥

श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥

श्रीरघुनाथजी के प्रताप से समुद्र में पत्थर तर गये। अत: वह लोग मन्दबुद्धि हैं जो ऐसे श्रीरामजीको छोड़कर किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं ॥१२९॥

लव निमेष परमानु जुग बरस कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ कालु जासु कोदंड ॥

जिनके लव, निमेष, परमाणु, युग, वर्ष और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं और जिनका धनुष काल हैं। हे मन! तू उन श्रीराम को क्यों नहीं भजता। ॥१३०॥

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोकधाम तजि काम ॥

जब तक यह जीव शोक के घर काम को त्यागकर श्रीरामजी को नहीं भजता, तब तक उसके लिये न तो कुशल है और न स्वप्न में भी उसके मन को शान्ति मिलती है ॥१३१॥

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहिं बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ अनुराग ॥

सत्संग के बिना हरिकथा सुनने को नहीं मिलती और श्री हरि की कथाओं के सुने बिना मोह नहीं भागता और मोह का नाश हुए बिना भगवान् श्रीरामजीके चरणों में सुदृढ़ प्रेम नहीं होता। ॥१३२॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न ल बिश्रामु ॥

भगवान् पर श्रद्धा-विश्वास हुए बिना उनकी भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्रीरामजी पिघलते नहीं और श्रीरामजी की कृपा बिना जीव को स्वप्र में भी विश्राम नहीं मिलता ॥ १३३ ॥

<u>सोरठा</u>

अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥

हे धीरबुद्धि ! ऐसा विचारकर सारे कुतर्कों और संशयों को त्याग कर करुणा की खान परम मनोहर दिव्य विग्रह, परम सुखदायक रघुवीर श्रीरामजी का भजन कीजिए ॥१३४॥

भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥

सुख के कोष और करुणा के धाम भगवान् भाव के वश हैं। अत: ममता, मद और अभिमान को त्यागकर निरन्तर सीता पति श्रीरामजी का भजन ही करना चाहिये ॥१३५॥

कहहिं बिमलमति संत बेद पुरान बिचारि अस।
द्रवहिं जानकी कंत तब छूटै संसार दुख ॥

निर्मल बुद्धिवाले संत, वेद और पुराणों के आधार पर यही कहते हैं कि जानकीनाथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब कृपा करते हैं, तभी संसार के दुःखों से छुटकारा मिलता है ॥१३६॥

बिनु गुरु होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥

क्या बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त हो सकता है, अथवा वैराग्य के बिना क्या ज्ञान प्राप्त हो सकता है? वेद-पुराण भी यही कहते हैं कि श्री हरि की भक्ति बिना कभी सुख की प्राप्ति हो सकती है? ॥१३७॥

दोहा

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान ॥

जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी के भजन बिना ही निर्वाणपद की कामना करता है, वह ज्ञानवान् होने पर भी बिना सींग-पूँछ का पशु है॥ १३८ ।

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ॥

वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता-पिता और भाई आदि सब यँ नष्ट हो जाएं, जो श्रीरामजी के चरणों के सम्मुख होने में प्रसन्नतापूर्वक सहायता नहीं करते ॥ १३९ ॥

सेइ साधु गुरु समुझि सिखि राम भगति थिरताइ।
लरिकाई को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ ॥

सच्चे साधु और सद्गुरु की सेवा करके उनसे श्रीरामजी के तत्त्वको समझो और सीखो, तब श्रीराम की भक्ति स्थिर हो

जायगी; क्योंकि बचपनमें सीखा हुआ तैरना फिर नहीं भूलता ॥ १४०॥

रामसेवक की महिमा

सबइ कहावत राम के सबहि राम की आस।
राम कहहिं जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास ॥

सभी श्रीराम के भक्त कहलाते हैं और सभी को श्रीराम ही आशा है। परंतु हे तुलसीदास ! तू तो उसी का भजन कर, जिसको स्वयं श्रीराम अपना भक्त कहते हैं ॥१४१॥

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान ॥

बुद्धिमान जन उसी शरीर का आदर करते हैं, जिस शरीरसे श्रीराम में प्रेम होता है। इस प्रेम के कारण ही हनुमान जी ने अपने रुद्रदेह को त्यागकर वानरका शरीर धारण किया है ॥१४२॥

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ॥

श्रीराम की सेवा के रहस्य को समझो और प्रेम की महिमा का अनुमान लगाओ, इस सेवा में परम आनन्द जानकर ही परम पुरुष ब्रह्माजी सेवक जाम्बवान् बन गए और श्री शिव हनुमान् हो गये। ॥१४३॥

तुलसी रघुबर सेवकहि खल डाटत मन माखि।
बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि दुष्ट लोग मन में क्रोध करके श्रीरघुनाथ जी के सेवक को वैसे ही डाँटा करते हैं जैसे बाजराज के बच्चे को बटेर आँख दिखाता है ॥ १४४॥

रावन रिपुके दास तें कायर करहिं कुचालि।
खर दूषन मारीच ज्यों नीच जाहिंगे कालि ॥

रावणा का वध करने वाले श्रीरामजी के दासों के साथ कायर ही कुचाल किया करते हैं। खर-दूषण या मारीच की भाँति वह सब नीच भी काल के गाल में समां जाएँगे ॥ १४५॥

पुन्य पाप जस अजस के भावी भाजन भूरि।

संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि ॥

सहायक और बाधक लोग भविष्य में पुण्य-पाप तथा यश-अपयश के खूब होंगे परन्तु लसीदास का संकट तो श्रीरामजी दूर कर ही देंगे। ॥ १४६॥

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ ॥

जैसे साँप के साथ खेलते हुए और अग्नि में हाथ डालते हुए बालक को उसके माता-पिता रोक लेते हैं ,वैसे ही तुलसीदास रूपी शिशु को विषयरूपी विषधर सर्प अथवा विषयरूपी ज्वाला की ओर जाते देखकर माता-पितारूप श्री सीताराम बचा लेते हैं ॥१४७॥

तुलसी दिन भल साहु कहँ भली चोर कहँ राति।
निसि बासर ता कहँ भलो मानै राम इताति ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि साहूकार के लिये दिन अच्छा है और चोर के लिये रात अच्छी है; परंतु जो श्रीरामजी की आज्ञा मानता है, उसके लिये रात-दिन दोनों ही कल्याणकारी हैं। ॥१४८॥

राम महिमा

तुलसी जाने सुनि समुझि कृपासिंधु रघुराज।
महँगे मनि कंचन किए सौंधे जग जल नाज ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हमने अच्छी तरह से समझकर यह भलीभाँति जान लिया है कि श्रीरघुनाथजी कृपाके समुद्र हैं, जिन्होंने मणियों को और सोनेको तो महँगा कर दिया; परंतु प्राण धारण करने के लिए आवश्यक वस्तुओं और अन्न को जगत् में सुलभ बना दिया है ॥१४९॥

राम भजन की महिमा

सेवा सील सनेह बस करि परिहरि प्रिय लोग।
तुलसी ते सब राम सों सुखद सँजोग बियोग ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जगत् के सम्बन्धी प्रियजनों को त्यागकर सेवा, शील और प्रेम से श्रीराम जी को वश में करो। श्रीरामजी के प्रति सेवा, प्रेम आदि करने पर प्रत्येक संयोग-वियोग सुखप्रद हो जायगा। ॥१५०॥

चारि चहत मानस अगम चनक चारि को लाहु।
चारि परिहरें चारि को दानि चारि चख चाहु ॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-इन चारों को मनुष्य चाहता है; परंतु यह अगम हैं, मिलते हैं केवल चार चने ही। अत: इन चारों की चाह छोड़कर चारों के देनेवाले भगवान् श्रीराम को बाहर के दो और भीतर के दो इन चारों नेत्रों से देखो। ॥१५१॥

राम प्रेम की प्राप्ति सुगम उपाय

सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति ॥

जिसका मन सरल है, वाणी सरल है और समस्त कर्म सरल हैं, उसके लिये भगवान् श्रीरघुनाथ जी के प्रेम को उत्पन्न करने वाली सभी विधियाँ सरल हैं ॥१५२॥

राम प्राप्ति में बाधक

बेष बिसद बोलनि मधुर मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइऐ भएँ बिषय जल मीन ॥

ऊपर का वेष साधुओं का-सा हो और बोली भी मीठी हो, परंतु मन कठोर और कर्म भी मलिन हो, तुलसीदास जी कहते हैं कि इस प्रकार विषय रूपी जल की मछली बने रहने से श्रीरामजी की प्राप्ति नहीं होती ॥१५३॥

बचन बेष तें जो बनइ सो बिगरइ परिनाम।
तुलसी मन तें जो बनइ बनी बनाई राम ॥

दम्भ से भरे हुए बाहरी वेष और वचनों से जो काम बनता है, वह दम्भ खुलने पर अन्त में बिगड़ जाता है; तुलसीदासजी कहते हैं कि जो काम सरल मन से बनता है, वह तो श्रीराम की कृपा से बना-बनाया ही है।। १५४॥

राम अनुकूलता में ही कल्याण है

नीच मीचु लै जाइ जो राम रजायसु पाइ।
तौ तुलसी तेरो भलो न तु अनभलो अघाइ ॥

रे नीच ! यदि श्रीरामजी की आज्ञा पाकर तुझे मृत्यु ले जाय तो उसमें भी तेरा कल्याण ही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि परंतु मनमाने जीवन में तो महान् अकल्याण ही है। ॥१५५॥

श्रीराम की शरणागतवत्सलता

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥

जो नीच जाति की और पापों की जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री शबरी को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महामूर्ख मन ! तू ऐसे प्रभु श्रीरामको भूलकर सुख चाहता है ? ॥१५६॥

बंधु बधू रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ॥

श्रीराम ने बालिको तो यह कहकर निरुत्तर कर दिया कि तू भाई की स्त्रीपर आसक्त है; परंतु तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु ने सुग्रीव की वैसी ही कुचाल पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥१५७

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीब निवाज ॥

श्रीराम ने शरीर से बली और सेना-राज्यादि बलों से युक्त बालि को मारकर सुग्रीवको अपना सखा और बंदरों का राजा बना दिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि कृपालु श्रीरामचन्द्रजी का विरद ही गरीबों की रक्षा करना है ॥१५८॥

कहा बिभीषन लै मिल्यो कहा बिगार्यो बालि।
तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आए पालि ॥

विभीषण ऐसा क्या लेकर आया था और बालि ने तो भगवान का क्या बिगाड़ा था? तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु सदा से ही अपने शरणागत की रक्षा करते आये हैं ।। १५९ ॥

तुलसी कोसलपाल सो को सरनागत पाल।
भज्यो बिभीषन बंधु भय भंज्यो दारिद काल ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि कोसलपति श्रीराम के समान शरणागत का पालन करनेवाला और कौन है? विभीषण ने भाई रावण के डर से श्रीरामजीका भजन किया था, परंतु

भगवान् ने उसकी दरिद्रता को तथा काल को नष्ट कर दिया। ॥१६०॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ॥

हे पक्षिराज ! श्रीराम का चित्त वज्र से अधिक कठोर है और फूलसे भी अधिक कोमल है। ऐसे में इस चित्त का रहस्य किसकी समझ में आ सकता है ॥ १६१ ॥

बलकल भूषन फल असन तृन सज्या द्रुम प्रीति।
तिन्ह समयन लंका दई यह रघुबर की रीति ॥

भगवान् श्री राम जिस समय स्वयं वल्कल-वस्त्रों से भूषित रहते थे, फल खाते थे, तिनकों की शय्या पर सोते थे और वृक्षों से प्रेम करते थे, उसी समय उन्होंने विभीषण को लंका प्रदान की। श्रीरघुनाथजी की यही रीति है। ॥१६२॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

जो सम्पत्ति रावण को शिव जी ने दस सिरों की बलि चढ़ानेपर दी थी, वही सम्पदा श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को बड़े संकोचके साथ दी ॥१६३॥

अबिचल राज बिभीषनहि दीन्ह राम रघुराज।
अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज ॥

रघुराज श्रीराम ने विभीषण को अविचल राज्य दे दिया; तुलसीदासजी कहते हैं कि इसी से वह आज भी अपने परिवार के साथ लंका के राज्य पद पर विराजमान है। ॥१६४॥

कहा बिभीषन लै मिल्यो कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जाने बिना मूढ़ मीजिहैं हाथ ॥

विभीषण क्या लेकर भगवानसे मिला था और श्रीरघुनाथजीने उसे क्या दे डाला? तुलसीदासजी कहते हैं, इस बातको बिना जाने मूर्ख लोग हाथ ही मलते रह जायँगे। ॥१६५॥

बैरि बंधु निसिचर अधम तज्यो न भरें कलंक।
झूठें अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ ससंक ॥

शत्रु रावण के भाई, नीच राक्षस और कलंक से भरे रहने पर भी विभीषण को तो श्री राम ने अपनी शरण में ले लिया और झूठे ही अपराधों के कारण पवित्रात्मा सीताका त्याग कर दिया। ॥१६६॥

तेहि समाज कियो कठिन पन जेहिं तौल्यो कैलास।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं सेवक को बिस्वास ॥

उसी रावण के दरबार में अंगद ने पाँव रोपकर कठिन प्रण कर लिया जिस रावण ने कैलास को हाथों से तौला था। तुलसीदास जी कहते हैं, इसे मैं प्रभु की महिमा कहूँ या सेवक का विश्वास बतलाऊँ ॥ १६७ ॥

सभा सभासद निरखि पट पकरि उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहों बसन बेस जदुनाथ ॥

जिस समय द्रौपदी ने सभा की और सभासदों की ओर देखकर एक हाथ से अपनी साड़ी को पकड़ा और दूसरे हाथ को ऊँचा करके भगवान् को पुकारा, तुलसीदास जी कहते हैं कि उसी समय यादव पति भगवान् श्रीकृष्ण ने ग्यारहवाँ वस्त्रावतार धारण कर लिया ॥१६८॥

त्राहि तीनि कह्यो द्रौपदी तुलसी राज समाज।
प्रथम बढ़े पट बिय बिकल चहत चकित निज काज ॥

राजसभा में जब द्रौपदी ने घबरा कर तीन बार 'त्राहि त्राहि' पुकारा । पहली त्राहि कहते ही वस्त्र बढ़ गया, दूसरी में भगवान् व्याकुल हो उठे और तीसरी में] चकित होकर अपने कार्य की इच्छा करने लगे ॥१६९॥

सुख जीवन सब कोउ चहत सुख जीवन हरि हाथ।
तुलसी दाता मागनेउ देखिअत अबुध अनाथ ॥

सब कोई सुखमय जीवन चाहते हैं, परंतु सुखमय जीवन श्रीहरि के हाथ में है। तुलसीदास को तो जगत् में दाता और भिखारी दोनों ही मूर्ख और अनाथ दिखायी देते हैं ॥१७०॥

कृपन देइ पाइअ परो बिनु साधें सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि जौ कीजै सुभ सोइ ॥

कृपण दे देता है, पड़ा मिल जाता है, बिना ही साधनके सिद्धि हो जाती है। श्रीसीतापति जी को सम्मुख समझकर जो कुछ कीजिये, वही शुभ हो जाता है। ॥१७१॥

दंडक बन पावन करन चरन सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं खल तरहिं होइ रंक ते राउ ॥

दण्डकवन को पवित्र करने वाले भगवान के चरणकमलों के प्रभाव से ऊसर भूमि में भी अन्न उत्पन्न हो जाता है, दुष्ट तर जाते हैं और रैंक भी राजा बन जाता है ॥१७२॥

बिनहिं रितु तरुबर फरत सिला द्रवहि जल जोर।
राम लखन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर ॥

वृक्षों में बिना ऋतु के ही फल लगने लगते हैं और पत्थर की शिलाओं से अत्यंत वेग बड़े जोर से जल बहने लगता है जब श्री राम, लक्ष्मण और सीता जी का कृपा कटाक्ष किसी की ओर हो जाता है। ॥१७३॥

सिला सुतिय भइ गिरि तरे मृतक जिए जग जान।
राम अनुग्रह सगुन सुभ सुलभ सकल कल्यान ॥

श्रीराम कृपा से शिला सुन्दरी स्त्री बन गयी, समुद्र में पहाड़ तर गये और युद्धमें मरे हुए वानर-भालु पुनः जीवित हो गए। श्रीराम जी की कृपासे सब शुभ सद्गुण आ जाते हैं, सब प्रकार के कल्याण सुलभ हो जाते हैं। ॥१७४॥

सिला साप मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास।
तजहु सोच संकट मिटिहिं पूजहि मनकी आस ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि शिला अहल्या को शाप से मुक्त करनेवाले श्रीरामजी के चरणों का स्मरण करो और सब चिन्ताओं का त्याग कर दो। इस प्रकार अनन्य श्रीराम चिन्तनसे समस्त संकट दूर हो जायँगे और मनोकामना पूर्ण हो जायगी। ॥१७५॥

मुए जिआए भालु कपि अवध बिप्रको पूत।
सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ॥

जिन्होंने लंका में मरे हुए बंदर-भालुओं को जीवित कर दिया और अयोध्या में मरे हुए एक ब्राह्मण के बालक को जीवित कर दिया, हे तुलसीदास ! तुम उनका स्मरण करो, जिनके दूत पवनपुत्र हनुमान जी हैं ॥१७६ ॥

प्रार्थना

काल करम गुन दोर जग जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर रावरो जानु जानकीनाथ ॥

हे रघुनाथजी ! काल, कर्म, गुण, दोष, जगत्-जीव सब आपके ही अधीन हैं। हे जानकीनाथ ! इस तुलसी को भी अपना ही जानकर अपनाइये ॥ १७७॥

रोग निकर तनु जरठपनु तुलसी संग कुलोग।
राम कृपा लै पालिऐ दीन पालिबे जोग ॥

तुलसीदास जी कहते हैं -मेरा शरीर रोगों की खान है, वृद्धावस्था है और बुरे लोगों का संग है। हे राम! आप कृपा करके मुझे अपनाकर मेरा पालन कीजिये, यह दीन पालने योग्य है ॥१७८॥

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥

हे रघुवीर ! मेरे समान तो कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनबन्धु नहीं है । ऐसा विचारकर हे

रघुवंशमणि ! जन्म-मरण के महान् भय का नाश कीजिये ॥१७९॥

भव भुअंग तुलसी नकुल डसत ग्यान हरि लेत।
चित्रकूट एक औषधी चितवत होत सचेत ॥

संसाररूपी सर्प तुलसीदास रूपी नेव लेको डसते ही उसका सारा ज्ञान हरण कर लेता है; परंतु चित्रकूट एक ऐसी औषध है कि उसकी ओर देखते ही वह पुनः सचेत हो जाता है ॥१८०॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास ॥

सब लोग मुझे श्रीराम का दास कहते हैं और मैं भी बिना लज्जा-संकोच के कहलाता हूँ। कृपालु श्री राम इस उपहास को सहते हैं कि श्री जानकीनाथ जी कैसे स्वामी का तुलसीदास का सेवक है ॥१८१॥

रामराज्य की महिमा

राम राज राजत सकल धरम निरत नर नारि।

राग न रोष न दोष दुख सुलभ पदारथ चारि ॥

राम राज्य में सभी नर-नारी अपने-अपने धर्म में रत होकर शोभित हो रहे हैं। कहीं भी राग, क्रोध, दोष और दुःख नहीं हैं; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चारों पदार्थ सुलभ हो रहे हैं ॥ १८२ ॥

राम राज संतोष सुख घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु सुरधेनु महि अभिमत भोग बिलास ॥

रामराज्य में सब प्रकार से संतोष और सुख है, घर में तथा वन में दोनों ही जगह सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। वृक्ष कल्पवृक्ष के समान और पृथ्वी कामधेनुके समान इच्छामात्र को पूर्ण करती है और मनोवांछित भोग-विलास सबको प्राप्त हैं ॥ १८३॥

खेती बनि बिद्या बनिज सेवा सिलिप सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम कें राज ॥

श्रीरामजी के राज्य में खेती, मजदूरी, विद्या, व्यापार, सेवा और कारीगरी तथा अन्य सुन्दर कार्य तुलसीदासजी कहते

हैं कि कल्पवृक्ष के समान सब सुन्दर शुभ फलों के देनेवाले हैं ॥१८४॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचंद्र कें राज ॥

श्रीरामचन्द्र जी के राज्य में दण्ड केवल संन्यासियों के हाथों में रह गया था और भेद केवल नृतकों के समाज में था; और 'जीतो' शब्द केवल मन को जीतने के प्रसंग में ही सुनाई देता था ॥१८५॥

कोपें सोच न पोच कर करिअ निहोर न काज।
तुलसी परमिति प्रीति की रीति राम कें राज ॥

श्रीरामचन्द्रजी के राज्य में प्रेम की रीति सीमा तक पहुँच गयी थी। इनसे न तो किसी के क्रोध करने पर कोई उसकी चिन्ता ही करता और न उसका कोई अपकार ही करता। सब लोग सबका काम प्रेम से करते। काम करनेमें कोई किसीपर अहसान नहीं जताता ॥१८६॥

श्रीराम की दयालुता

मुकुर निरखि मुख राम भ्रू गनत गुनहि दै दोष।

तुलसी से सठ सेवकन्हि लखि जनि परहिं सरोष ॥

श्रीराम दर्पण में अपना श्रीमुख निरखकर अपनी टेढ़ी भौंहों को जो एक गुण है, दोष देते हैं और सोचते हैं कि तुलसी जैसे दुष्ट सेवकों को कहीं इन टेढ़ी भ्रुकुटियों में क्रोध न दिखायी देने लगे॥१८७॥

श्रीराम की धर्म धुरन्धरता

सहसनाम मुनि भनित सुनि तुलसी बल्लभ नाम।
सकुचित हियँ हँसि निरखि सिय धरम धुरंधर राम ॥

मुनि के कहे हुए राम सहस्रनाम में 'तुलसीवल्लभ' अपना नाम सुनकर धर्मधुरंधर भगवान् श्रीरामजी हँसकर सीताजीकी ओर देखते हैं और मन हीमन सकुचाते हैं। ॥१८८॥

श्रीसीता जी का अलौकिक प्रेम

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहँसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥

मुनि गौतम की पत्नी अहल्या की गति को याद करके श्री सीता जी अपने हाथों से भगवान् श्रीरामजी के पैर नहीं छूतीं। रघुवंश विभूषण श्रीराम सीता जी के इस अलौकिक प्रेम को जानकर मन ही मन हँसने लगे ॥ १८९ ॥

श्रीराम की कीर्ति

तुलसी बिलसत नखत निसि सरद सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजसु सिसु हाथ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा के साथ रात्रि में नक्षत्रावली ऐसी शोभा देती है, मानो श्रीराम के सुयशरूपी शिशु के हाथ में मोतियों की झालर झलमला रही हो ॥१९०॥

रघुपति कीरति कामिनी क्यों कहै तुलसीदासु।
सरद अकास प्रकास ससि चारु चिबुक तिल जासु ॥

श्रीरघुनाथ जी की कीर्तिरूपी कामिनी का तुलसीदास कैसे बखान कर सकता है ? शरत् पूर्णिमा के आकाश में प्रकाशित होने वाला चन्द्रमा मानो उस कीर्ति-कामिनी की ठुड्डी का तिल है॥ १९१ ॥

प्रभु गुन गन भूषन बसन बिसद बिसेष सुबेस।
राम सुकीरति कामिनी तुलसी करतब केस ॥

प्रभु श्रीराम के गुणों के समूह श्रीराम की सुन्दर कीर्ति रूपी कामिनी के वस्त्र और आभूषण हैं, जिनसे उसका वेष बहुत ही स्वच्छ और सुन्दर जान पड़ता है और तुलसीदास की जो करतूत है, वह उसके केश हैं ॥ १९२ ॥

राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥

श्रीराम के चरित्र पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों के समान सभी को सुख देनेवाले हैं, परंतु सज्जन रूपी कुमुद और चकोरों के चित्त के लिये तो वह विशेष रूप से हितकारी और महान् लाभरूप हैं ॥१९३॥

रघुबर कीरति सज्जननि सीतल खलनि सुताति।
ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ॥

जिस प्रकार चाँदनी रात चकोरों के समूह के लिये शान्तिदायिनी और चकवों के लिये विशेष ताप देने वाली

होती है, तुलसीदास जी कहते हैं कि उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी की कीर्ति सज्जनों के लिये शीतल और दुर्जनों को विशेष जलाने वाली होती है।॥१९४॥

रामकथा की महिमा

राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामजी की कथा मन्दाकिनी नदी है, सुन्दर चित्त चित्रकूट है और स्नेह ही सुन्दर वन है, जिसमें श्रीसीतारामजी विहार करते हैं ॥१९५॥

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥

श्यामा गौ काली होने पर भी उसका दूध बहुत उज्ज्वल और गुणदायक होता है, इसी से लोग उसे पीते हैं। इसी प्रकार बुद्धिमान् संतजन श्रीसीताराम जी के यश को गँवारू भाषामें होने पर भी गाते और सुनते हैं ॥ १९६॥

हरि हर जस सुर नर गिरहुँ बरनहिं सुकबि समाज।

हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज ॥

सुकवि गण भगवान् श्रीहरि और भगवान् श्रीशंकर के यश को संस्कृत और भाषा दोनों में ही वर्णन करते हैं। उत्तम अनाज को चाहे मिट्टी की हाँडी में पकाया जाय, चाहे सोने के पात्रमें, वह स्वादिष्ट ही होता है। ॥१९७॥

राममहिमा की अज्ञेयता

तिल पर राखेउ सकल जग बिदित बिलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की कौन जानिबे जोग ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीराम जी की महिमा को पूर्णरूप से जानने का अधिकारी कौन है? उन्होंने आँख के काले तिल पर सारे जगत् को रख दिया है, इस बात को सब लोग जानते हैं और प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ १९८ ॥

श्रीरामजीके स्वरुपकी अलौकिकता

सोरठा

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥

हे रामजी! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर और बुद्धिसे परे है। इस स्वरूप को न कोई जान पाया है, न बखान कर सकता है, न उसका पार ही पा सकता है; इसलिये वेद सदा 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन करते हैं। ॥१९९॥

ईश्वर-महिमा

दोहा

माया जीव सुभाव गुन काल करम महदादि।
ईस अंक तें बढ़त सब ईस अंक बिनु बादि ॥

माया, जीव, स्वभाव, गुण, काल, कर्म और महत्तत्त्वादि सब ईश्वररूपी अंक के संयोग से बढ़ते हैं और उस अंक के बिना व्यर्थ हो जाते हैं। ॥२००॥

श्रीरामजी की भक्तवत्सलता

हित उदास रघुबर बिरह बिकल सकल नर नारि।
भरत लखन सिय गति समुझि प्रभु चख सदा सुबारि ॥

श्रीरघुनाथजी के विरह में उनके मित्र उदासीन, सभी स्त्री पुरुष व्याकुल थे; परंतु श्री भरतजी, श्री लक्ष्मण जी और श्री सीता जी की दशा को समझकर तो प्रभु श्री रामजी के नेत्रों में भी सदा आँसू भरे रहते थे। ॥२०१॥

सीता,लक्ष्मण और भरत जी के रामप्रेम की अलौकिकता

सीय सुमित्रा सुवन गति भरत सनेह सुभाउ।
कहिबे को सारद सरस जनिबे को रघुराउ ॥

श्री सीता जी तथा श्री लक्ष्मण जी की अनन्य प्रेम की चाल और श्री भरत जी के प्रेम और स्वभाव को कहने के लिये केवल सरस्वती जी ही समर्थ हैं और जानने के लिये केवल श्रीरघुनाथजी ही ॥२०२॥

जानि राम न कहि सके भरत लखन सिय प्रीति।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत हठ सठता की रीति ॥

श्री भरतजी, श्री लक्ष्मणजी और श्री सीता जी के प्रेम को श्रीरामचन्द्र जी ही जान सके; पर वह भी उसका वर्णन नहीं कर सके। इस बात को सुनकर और विचार कर भी तुलसीदास हठवश उनके प्रेम का वर्णन करने चला है, यह उसकी दुष्टता और मूर्खता की ही निशानी है ॥२०३॥

सब बिधि समरथ सकल कह सहि साँसति दिन राति।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामिधर्म सब भाँति ॥

प्रे मके तत्त्वको जानने और निबाहने में श्रीरामजी ही सब प्रकार से समर्थ हैं, सब लोग यही कहते हैं। इसी के अनुसार उन्होंने सब कुछ सुन समझकर दिन-रात कष्ट सहते हुए अपने स्वामि धर्म को सब प्रकार से भलीभाँति निबाहा। ॥२०४॥

भरत-महिमा

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद पाकर भी भरत को राजमद नहीं हो सकता। काँजी की बूंदों से भला क्या कभी क्षीरसागर नष्ट हो सकता है? ॥२०५॥

संपति चकई भरत चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार ॥

भोग-विलास की सामग्री मानो चकवी है और भरतजी चकवा हैं तथा भरद्वाज मुनि की आज्ञा खिलाड़ी है, जिसने उस रातको आश्रमरूपी पिंजड़े में दोनों को बंद कर रखा था और वैसे ही सवेरा हो गया; परंतु दोनों का मिलन नहीं हुआ। ॥२०६॥

सधन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहिं भई भरतकी भेंट ॥

जैसे धन लेकर प्रसन्न-मन से रास्ते में जाते हुए चोर को धनी आकर पकड़ ले, उस समय उस चोर की जैसी हालत होती है, वैसी ही हालत भरत से मिलने पर सुग्रीव और विभीषण की हुई। ॥२०७॥

राम सराहे भरत उठि मिले राम सम जानि।

तदपि बिभीषन कीसपति तुलसी गरत गलानि ॥

यद्यपि श्रीरामजी ने विभीषण और सुग्रीव की बड़ी प्रशंसा की और भरत जी भी उन्हें श्रीरामजी के समान समझकर ही उठकर उनसे मिले, तुलसीदासजी कहते हैं कि तथापि वे ग्लानि से गले ही जाते थे ॥२०८॥

भरत स्याम तन राम सम सब गुन रूप निधान।
सेवक सुखदायक सुलभ सुमिरत सब कल्यान ॥

श्रीभरतजी का श्रीराम के समान ही श्याम-शरीर है और उन्हीं के समान वह रूप-गुण के खजाने तथा सेवकों को सुख देनेवाले हैं। इनका स्मरण करते ही सब कल्याण सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। ॥२०९॥

लक्ष्मण महिमा

ललित लखन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह।
सुख संपति कीरति बिजय सगुन सुमंगल गेह ॥

जो सुख, सम्पत्ति, कीर्ति, विजय, सद्गुण और सुन्दर कल्याणके घर हैं, उन परम मनोहर श्रीलक्ष्मणजी की मधुर मूर्ति का प्रेमसहित स्मरण करो ॥२१०॥

शत्रुघ्न महिमा

नाम सत्रुसूदन सुभग सुषमा सील निकेत।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख सकल सुमंगल देत ॥

शोभा और शील के धाम श्रीशत्रुघ्नजी के सुन्दर नाम का भजन और स्मरण करने से सब सुख सुलभ हो जाते हैं और वह भजन स्मरण सब सुन्दर मंगलों को देनेवाला है। ॥२११॥

कौसल्या महिमा

कौसल्या कल्यानमइ मूरति करत प्रनाम।
सगुन सुमंगल काज सुभ कृपा करहिं सियाराम ॥

श्री कौसल्याजी कल्याणमयी मूर्ति हैं, उन्हें प्रणाम करने पर सब शुभ सगुन और सुन्दर मंगल होते हैं और सब कार्य

सफल होते हैं तथा श्रीसीताराम जी कृपा करते हैं ॥ २१२ ॥

सुमित्रा महिमा

सुमिरि सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम।
सुअन लखन रिपुदवन से पावहिं पति पद प्रेम ॥

जगत् ने जो स्त्रियाँ सुमित्राजी का नाम लेकर नियम लेती हैं, वह लक्ष्मण और शत्रुघ्न-जैसे पुत्र तथा पति के चरणों में प्रेम करती हैं। ॥२१३॥

सीता महिमा

सीताचरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सुनेम।
होहिं तीय पतिदेवता प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥

भलीभाँति नियमपूर्वक श्रीसीताजी के चरणों में प्रणाम करने से और उनके सुन्दर नाम का स्मरण करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जाती हैं और अपने प्रिय प्राणनाथ का प्रेम प्राप्त करती हैं ॥२१४॥

रामचरित्र की पवित्रता

तुलसी केवल कामतरु रामचरित आराम।
कलितरु कपि निसिचर कहत हमहिं किए बिधि बाम ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचरित रूपी बगीचे में केवल कल्पवृक्ष ही हैं। सुग्रीवादि बंदर और विभीषणादि राक्षस कहते हैं कि विधाता हमारे लिये विपरीत था, जिसने हम लोगोंको कलितरु बनाया, परंतु कृपामय श्रीरघुनाथ जी ने हमें भी अपने उस चरित्ररूप पावन उद्यान में स्थान दे दिया ॥२१५॥

कैकेयी की कुटिलता

मातु सकल सानुज भरत गुरु पुर लोग सुभाउ।
देखत देख न कैकइहि लंकापति कपिराउ ॥

समस्त माताएं, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसहित भरतजी, गुरु जन तथा अयोध्यावासियों के स्वाभाव को लंकेश्वर विभीषण और वानरराज सुग्रीव बड़े ही आदर तथा आह्लाद के साथ देखते

हैं, परंतु कैकेयी के विरोधी स्वभाव को नहीं देख सकते ॥ २१६ ॥

सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥

श्रीरघुनाथजी के, स्वभाव से ही सरल वचनों को, दुर्बुद्धि कैकेयी ने टेढ़ा ही समझा। यद्यपि जल समान ही होता है तथापि जोंक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है ॥ २१७॥

दशरथ महिमा

दसरथ नाम सुकामतरु फलइ सकलो कल्यान।
धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान ॥

दशरथ जी का नाम सुन्दर कल्पवृक्ष है, उसका सेवन करने पर पृथ्वी, घर, धन, धर्म, सद्गुणी और रूपनिधान पुत्र- इस प्रकार के सभी कल्याणमय फल फलते हैं। ॥२१८॥

तुलसी जान्यो दसरथहिं धरमु न सत्य समान।
रामु तजे जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि दशरथ जी ने ही इस तत्त्व को जाना था कि सत्य के समान कोई भी धर्म नहीं है। जिस सत्य के लिए उन्होंने श्रीराम को त्याग दिया और श्रीराम के विरह में प्राण त्याग दिए ॥ २१९ ॥

राम बिरहँ दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु।
तुलसी मंगल मरन तरु सुचि सनेह जल सींचु ॥

श्रीराम के विरह में दशरथ की मृत्यु हो गई, ऐसी शुभ मृत्यु तक मुनियों के मन से भी अगम्य हैं। तुलसीदास जी कहते हैं, ऐसे मंगलमय मृत्यु रूपी वृक्ष को पवित्र श्रीराम प्रेम रूपी जल से सींचते रहो।॥ २२० ॥

<u>सोरठा</u>

जीवन मरन सुनाम जैसें दसरथ राय को।
जियत खिलाए राम राम बिरहँ तनु परिहरेउ ॥

जीवन और मृत्यु दोनों में ही जिस प्रकार महाराज दशरथजीका नाम हुआ वैसा किसी अन्य के लिए सम्भव नहीं है। जीवन काल में उन्होंने भगवान् श्रीरामको गोद खिलाया और शरीर श्रीराम के विरह में छोड़ा ॥ २२१॥

जटायु का भाग्य

दोहा

प्रभुहि बिलोकत गोद गत सिय हित घायल नीचु।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीचु ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु को निहारते हुए, उनकी की गोद में, सीताजी के हित के लिए घायल हुए और नीच शरीर होने पर भी गृध्रराज जटायु ने मनोहर मृत्यु रुपी मुक्ति प्राप्त की, वह धन्य हैं ॥२२२॥

बिरत करम रत भगत मुनि सिद्ध ऊँच अरु नीचु।
तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराज की मीचु ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि विरक्त, कर्मयोगी, भक्त, ज्ञानी, मुनि, सिद्ध, ऊँच और नीच-सभी गृध्रराज की दुर्लभ मृत्यु का समाचार सुनकर उनकी ईर्ष्या करने लगे ॥२२३॥

मुए मरत मरिहैं सकल घरी पहरके बीचु।
लही न काहूँ आजु लौं गीधराज की मीचु ॥

आज तक कितने मर गये, वर्तमान में कितने मर रहे हैं और भविष्य में घड़ी-पहर के अन्तर से सभी मरेंगे ही; परंतु आजतक जटायु जैसी सुन्दर मृत्यु किसी ने भी प्राप्त नहीं की ॥२२४॥

मुँए मुकुत जीवत मुकुत मुकुत मुकुत हूँ बीचु।
तुलसी सबही तें अधिक गीधराज की मीचु ॥

कोई मरनेपर मुक्त होता है, कोई जीता ही मुक्त हो जाता है; मुक्त-मुक्तमें भी भेद होता है। तुलसीदासजी कहते हैं, इन सभी मुक्तियों से बढ़कर गृध्रराज की मुक्ति हुई ॥२२५ ॥

रघुबर बिकल बिहंग लखि सो बिलोकि दोउ बीर।
सिय सुधि कहि सियल राम कहि देह तजी मति धीर ॥

श्रीरघुनाथ जी ने व्याकुल जटायु को देखा, जटायु ने भी दोनों भाइयों को देखा और उन्हें सीताजी का समाचार सुनाकर उस धीर बुद्धि जटायु ने 'सीताराम', 'सीताराम' कहते हुए शरीर छोड़ दिया ॥ २२६ ॥

दसरथ तें दसगुन भगति सहित तासु करि काजु।

सोचत बंधु समेत प्रभु कृपासिंधु रघुराजु ॥

कृपा के समुद्र श्रीरघुनाथजी ने अपने पिता श्रीदशरथ जी से दस गुणा भक्तिभाव से जटायु मृतक संस्कार किया और भाई लक्ष्मणजी सहित उसकी मृत्यु के लिये शोक करने लगे ॥२२७॥

रामकृपा की महत्ता

केवट निसिचर बिहग मृग किए साधु सनमानि।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगल खानि ॥

जिसने केवट, राक्षस, पक्षी और पशुओं को भी सम्मान देकर साधु बना दिया, तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी कृपा समस्त सुमंगलों की खान है ॥२२८॥

हनुमत्स्मरण की महत्ता

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर कमल तल सुमिरत रघुबर दूत ॥

वायुपुत्र श्रीहनुमानजी मनोहर मङ्गल और आनन्दकी मूर्ति हैं। उन श्री रामजी के दूत का स्मरण करते ही समस्त सिद्धियाँ करतलगत (सुलभ) हो जाती हैं ॥ २२९ ॥

धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु।
अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि बिचारु ॥

धीर, वीर श्रीरघुवीर के प्यारे पवनकुमार श्रीहनुमान जी का स्मरण करके चाहे जैसे दुर्लभ या सुलभ सभी कार्यों को करना चाहिए और यह निश्चय रखना चाहिए कि सफलता तुम्हारे हाथ में ही है ॥२३०॥

सुख मुद मंगल कुमुद बिधु सुगुन सरोरुह भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ आनि हिएँ हनुमानु ॥

सुख, आनन्द और मङ्गलरूपी कुमुदिनी के खिलानेके लिये चन्द्रमाके सदृश और सुन्दर गुणरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिये सूर्यके समान श्रीहनुमान्जीका हृदयमें ध्यान करके कार्य आरम्भ करो; फिर सब शुभ और सिद्ध ही होगा ॥ २३१ ॥

सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमंगल जानु।

कीरति बिजय बिभूति भलि हियँ हनुमानहि आनु ॥

श्रीहनुमान जी का हृदयमें ध्यान करो और यह निश्चय समझ लो कि तुम्हारे सभी कार्य सिद्ध होंगे, दिन अच्छे आयेंगे, सभी सद्गुण, सुमंगल, कीर्ति, विजय और विमल विभूति की प्राप्ति होगी ॥ २३२॥

सूर सिरोमनि साहसी सुमति समीर कुमार।
सुमिरत सब सुख संपदा मुद मंगल दातार ॥

शूरों के शिरोमणि, साहसी, सुबुद्धिमान् श्रीपवनकुमार का स्मरण करते ही स्मरण करनेवालेको समस्त सुख, सम्पत्ति, आनन्द और मंगल प्रदान करने वाले हैं ॥२३३॥

बाहुपीड़ा की शान्तिके लिये प्रार्थना

तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिऐ कपि केसरी किसोर ॥

हे दयानिधान हनुमान जी ! देखिये, तुलसीदास के शरीर रूपी सरोवर के सुखरूपी कमल को यह भुजा का

रोगरूप हाथी बल पूर्वक नष्ट कर रहा है। आप ही केसरीनन्दन हैं ॥२३४॥

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रबेस।
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िअ मिटै कलेस ॥

मेरी भुजा पेड़ के कोटर के समान है, उसमें रोगरूपी सर्प बलात घुस गया है। हे गरुड़वाहन हरि ! उसे आप शीघ्र निकाल डालिये, जिससे मेरा कष्ट दूर हो। ॥२३५॥

बाहु बिटप सुख बिहँग थलु लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सीचिऐ बेगि दीन हित लागि ॥

मेरा भुजारूपी वृक्ष सुखरूपी पक्षी का निवासस्थान था, उसमें दुष्ट रोगरूपी बुरी आग लग गयी है। हे हनुमान जी! शीघ्र ही इस दीन के भले के लिये श्रीराम कृपा रूपी जल सींचकर उस आग को बुझा दीजिये ॥ २३६ ॥

काशी महिमा

सोरठा

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥

जहाँ भगवान् श्री शिवजी और माता पार्वती जी रहते हैं; उस काशी को पापों को नष्ट करने वाली, ज्ञान की खान और मुक्ति को उत्पन्न करनेवाली जानकर क्यों न उसका सेवन किया जाय? ॥ २३७॥

शंकर महिमा

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस ॥

जिस भयंकर विष से सारे देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, हे मन्द मन ! तू उन श्रीशिवजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु कौन है ? ॥२३८॥

शंकर जी से प्रार्थना

दोहा

बासर ढासनि के ढका रजनीं चहुँ दिसि चोर।
संकर निज पुर राखिऐ चितै सुलोचन कोर ॥

दिन में तो मुझे ठगों के धक्के खाने पड़ते हैं और रात को मुझे चारों ओर से चोर सताते हैं, अत: हे शंकर जी ! कृपादृष्टि के कोर से मेरी ओर देखकर अपनी काशीपुरी में इनसे मेरी रक्षा कीजिये ॥२३९॥

अपनी बीसीं आपुहीं पुरिहिं लगाए हाथ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥

हे विश्वनाथजी ! आपने अपनी बीसी में स्वयं अपनी पुरी में कार्य आरम्भ कर दिया। फिर मैं विश्व की ओर से किस प्रकार आपसे प्रार्थना करूँ? ॥२४०॥

भगवल्लीला की दुर्ज्ञेयता

और करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु ॥

अपराध करे कोई और,उसके फल का भोग पावे कोई और ही। भगवान की लीला अति विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत् में अन्य कौन है॥२४१॥

प्रेम में प्रपञ्च बाधक है

प्रेम सरीर प्रपंच रुज उपजी अधिक उपाधि।
तुलसी भली सुबैदई बेगि बाँधिऐ ब्याधि ॥

प्रेम रूपी शरीर में यदि विषयासक्ति का रोग लग जाता है तो बड़ी भारी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अच्छी वैद्यता इसी में है कि व्याधिको तुरंत रोक दिया जाय ॥२४२॥

अभिमान ही बन्धन का मूल है

हम हमार आचार बड़ भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोस कृमि कीस ॥

हम बड़े हैं और हमारा आचार श्रेष्ठ हैं, ऐसे अभिमान का भारी बोझ सिर पर रखकर मूर्ख लोग तोते, रेशम के कीड़े

और बंदर की तरह हठ पूर्वक पराधीन हो जाते हैं ॥ २४३ ॥

जीव और दर्पण के प्रतिबिम्ब की समानता

केहिं मग प्रबिसति जाति केहिं कहु दरपनमें छाहँ।
तुलसी ज्यों जग जीव गति करि जीव के नाहँ ॥

भला बतलाओ तो दर्पण में छाया किस रास्ते से घुसती है और किस रास्ते से निकल जाती है? तुलसीदासजी कहते हैं कि जीवों के नाथ परमात्मा ने संसार में जीवों की भी ऐसी ही चाल बनायी है ॥२४४॥

भगवन माया की दुर्ज्ञेयता

सुखसागर सुख नींद बस सपने सब करतार।
माया मायानाथ की को जग जाननिहार ॥

सुखसागर परमात्मा ही जीव के रूप में सुख की नींद सो रहे हैं और स्वप्नवत् सब काम कर रहे हैं। माया के स्वामी की इस माया को जाननेवाला जगत् में कौन है? ॥ २४५॥

जीव की तीन दशाएँ

जीव सीव सम सुख सयन सपनें कछु करतूति।
जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति ॥

जीव सुख से सोने के समय शिव के समान है, स्वप्न में कुछ कार्य करता है और जाग्रतवस्था में वही दीन-मलीन हो जाता है और अनेक प्रकार के शोक की सम्पत्ति से व्याकुल रहता है ॥२४६॥

सृष्टि स्वप्नवत् है

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥

स्वप्न में राजा भिखारी हो जाता है और कंगाल इन्द्र हो जाता है। परंतु जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं होती। वैसे ही इस विषय रूप संसार को भी हृदय से देखो ॥२४७॥

हमारी मृत्यु प्रतिक्षण हो रही है

तुलसी देखत अनुभवत सुनत न समुझत नीच।
चपरि चपेटे देत नित केस गहें कर मीच ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि रे नीच ! हाथों से तेरी चोटी पकड़कर मृत्यु नित्य ही झपटकर तेरे चपत जमा रही है। यह दशा देखकर, सुनकर और अनुभव करके भी तू नहीं समझता। ॥२४८॥

काल की करतूत

करम खरी कर मोह थल अंक चराचर जाल।
हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्यौतिषी काल ॥

जगत में कालरूपी ज्योतिषी हाथ में कर्मरूपी खड़िया लेकर मोहरूपी पट्टी पर चराचर जीव रूपी अंकों को मिटाता है, हिसाब लगाता है, फिर गिन-गिनकर मिटाता है ॥२४९॥

इन्द्रियों की सार्थकता

कहिबे कहँ रसना रची सुनिबे कहँ किये कान।

धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान ॥

चतुर परमात्मा ने भगवच्चर्चा कहनेके लिये जीभ बनायी, भगवद्गुणानुवाद सुनने के लिये कान रचे और प्रेमसहित भगवान् का ध्यान धरने के लिये चित्त बनाया ॥ २५० ॥

सगुण के बिना निर्गु णका निरूपण असम्भव है

ग्यान कहै अग्यान बिनु तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु तुलसीदास ॥

जो अज्ञान का कथन किए बिना ज्ञान का प्रवचन करे, अन्धकार का ज्ञान कराये बिना ही प्रकाश का स्वरूप बतला दे और सगुण को समझाए बिना ही निर्गुण का निरूपण कर दे, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह मेरा गुरु है ॥२५१॥

निर्गुण की अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है

अंक अगुन आखर सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
खोएँ राखें आपु भल तुलसी चारु बिचार ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म (१, २, ३) अंक के समान है और सगुण भगवान् अक्षर (एक, दो, तीन) के समान हैं; अब दोनों प्रकारोंको समझना चाहिये और फिर किसके न रखने से और किस के रखनेसे अपना कल्याण है, इस बात को भी भलीभाँति विचारना चाहिये तात्पर्य यह है की निर्गुण और सगुण दोनों सत्य हैं, एक ही दो रूपों में हैं; परंतु निर्गुण की अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है। निर्गुणमें तो किसी तरहका भ्रम भी रह सकता है, परंतु सगुण में किसी प्रकार का न तो कोई भ्रम रह सकता है। ॥ २५२ ॥

विषयासक्ति का नाश हुए बिना ज्ञान अधूरा है

परमारथ पहिचानि मति लसति बिषयँ लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरित मानहुँ सती परानि ॥

परमार्थ की पहचान हो जानेपर भी विषयोंमें लिपटी हुई बुद्धि ऐसी लगती है, मानो चिता से निकलकर भागी हुई कोई
अधजली सती हो ॥ २५३ ॥

विषयासक्त साधुकी अपेक्षा वैराग्यवान् गृहस्थ अच्छा है

सीस उधारन किन कहेउ बरजि रहे प्रिय लोग।
घरहीं सती कहावती जरती नाह बियोग ॥

अधजली भागनेवाली ऐसी सती को सिर खोलनेके लिये किसने कहा था? प्यारे सगे-सम्बन्धी तो सब रोक रहे थे। इससे तो यही अच्छा था कि स्वामीके वियोगकी अग्निमें सदा जला करती और घर बैठी ही सती कहलाती। ॥ २५४ ॥

साधु के लिये पूर्ण त्याग की आवश्यकता

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै बिमल बिबेक बिराग ॥

हे प्रियतम ! जब आप अपनी झोलीमें खरी और कपूर आदि सब सामान रखते हैं तब स्त्रीका त्याग उचित नहीं है। अतएव या तो मुझको भी इस झोलीमें डाल दीजिये, अथवा विशुद्ध ज्ञान और वैराग्य को धारण कीजिये। ॥ २५५॥

किवदंती यह की साधू वेश धारण करने के बाद तुलसीदासजी जी की मुलाकात एक दिन अपनी स्त्री से हो गई। स्त्री ने उनकी झोली में सफेद गोपीचन्दन और कपूर आदि देखकर उपरोक्त दोहा कहा, तुलसीदास जी ने उसी क्षण झोली-झंडा फेंक दिया।

भगवतप्रेम में आसक्ति बाधक है, गृहस्थाश्रम नहीं

घर कीन्हें घर जात है घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीचहीं राम प्रेम पुर छाइ ॥

गृहस्थी में रहने से अपना असली घर अर्थात परलोक नष्ट हो जाता है और घर छोड़ने से अर्थात संन्यास धारण करने से गृहस्थी नष्ट हो जाती है। अत: तुलसीदासजी कहते हैं कि तू घर और वन के बीच में ही अर्थात् अपने घर में ही गृहत्यागी की भाँति रहकर श्रीरामजी के प्रेम की पुरी बसा ॥२५६॥

संतोषपूर्वक घर में रहना उत्तम है

दिएँ पीठि पाछें लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ ॥

सम्पत्ति शरीर की छायाके समान है। इसको पीठ देकर चलनेसे यह पीछे-पीछे चलती है और सामने होकर चलने से दूर भाग जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस बातको समझकर घर बैठकर ही दिन बिताओ ॥२५७॥

विषयों की आशा ही दुःख का मूल है

तुलसी अद्‌भूत देवता आसा देवी नाम।
सीँ सोक समर्पई बिमुख भएँ अभिराम ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि आशा देवी नामकी एक अद्‌भुत देवी है; यह सेवा करनेपर तो शोक देती है और इससे विमुख होनेपर सुख मिलता है ॥ २५८ ॥

मोह-महिमा

सोई सेंवर तेइ सुवा सेवत सदा बसंत।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत ॥

वही सेमल का पेड़ है और वही तोते हैं, तो भी मोहवश वसन्त ऋतु आनेपर सदा उसीपर मँडराये रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस बात को सुनकर संतजन भी मोहकी महिमा की सराहना करते हैं ॥२५९॥

बिषय-सुखकी हेयता

करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मति रंक।
पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धिउ नाउँ कलंक ॥

विषयी मनुष्य विषयों के लिये चेष्टा करते हुए यह नहीं समझते कि इनमें कहीं भी सुख नहीं है; विषयों के झूठे गुणों को सुनते ही उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। यह प्रपञ्चमय विषय-सुख प्रत्यक्ष पारे के समान है, जिसके सिद्ध होनेपर भी उसका नाम कलंक ही होता है ॥२६०॥

लोभ की प्रबलता

ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥

ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, पण्डित और गुणों का निवास स्थान, इस संसार में ऐसा कौन मनुष्य है, जिसकी लोभ ने मिट्टी पलीद न की हो? ॥ २६१ ॥

धन और ऐश्वर्यके मद तथा कामकी व्यापकता

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥

धनके मदने किसको टेढ़ा नहीं कर दिया, प्रभुताने किसको बहरा नहीं बना दिया और मृगलोचनी के नयन-बाण ऐसा कौन है, जिनको नहीं लगे? ॥२६२॥

माया की फौज

ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥

मायाकी प्रचण्ड सेना संसारभरमें फैल रही है, कामादिवीर इस सेनाके सेनापति हैं और दम्भ, कपट, पाखण्ड उसके योद्धा हैं ॥२६३॥

काम, क्रोध, लोभ की प्रबलता

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥

हे तात ! काम, क्रोध और लोभ-ये तीन दुष्ट बड़े ही बलवान् हैं, ये विज्ञानसम्पन्न मुनि के मन में भी पलक झपकते ही क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं ॥२६४॥

काम,क्रोध,लोभके सहायक

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥

श्रेष्ठ मुनि विचार कर कहते हैं कि लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है, काम को केवल कामिनी का बल है और क्रोध को कठोर वचन का बल है। ॥२६५॥

मोहकी सेना

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारुपी नारि ॥

काम, क्रोध, मद और लोभ आदि मोहकी प्रबल सेना है। इनमें स्त्री जो मायाकी साक्षात् मूर्ति है वह तो बहुत ही भयानक दुःख देनेवाली है ॥ २६६॥

अग्नि, समुद्र, प्रबल स्त्री और कालकी समानता

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥

अग्नि क्या नहीं जला सकती? समुद्र में कौन सी वस्तु नहीं डूब
सकती, प्रबल होनेपर अबला कहलानेवाली स्त्री क्या नहीं कर सकती? और जगत् में काल किसको नहीं लील सकता ? ॥२६७॥

स्त्री झगड़े और मृत्युकी जड़ है

जनमपत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि ॥

जन्मकुण्डली को व्यवहार में लाकर मन में विचारकर देखो कि स्त्री भयंकर वैरी के और मृत्यु के बीच के स्थान में विराज रही है ॥२६८॥

उद्बोधन

दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥

युवती स्त्रियों का शरीर दीपक की लौ के समान है, मन ! तू उसमें पतंग मत बन। काम और मद को त्यागकर श्रीराम का भजन कर और सदा सत्संग कर। ॥२६९॥

गृहासक्ति ज्ञान में बाधक है

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे भव कूप ॥

जो काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण हैं और जो दुःखरूप गृह में आसक्त हैं, वह संसार रूपी कुएँ में पड़े हुए मूढ़ श्रीरघुनाथजी को कैसे जान सकते हैं ? ॥२७०॥

काम-क्रोधादि एक-एक अनर्थकारक है फिर सबकी तो बात ही क्या है

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार ॥

जिसे कुग्रह लगे हों, जो वायुरोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, ऐसे तीन प्रकार से पागल बने हुए को ऊपरसे शराब पिला दी जाय तो कहिये यह कैसा इलाज है? ॥२७१॥

किसके मन को शान्ति नहीं मिलती ?

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम ॥

क्या कभी उसको स्वप्न में भी सम्पत्ति, शुभ शकुन या चित्त की शान्ति प्राप्त हो सकती है, जो मनुष्य मोह के वशीभूत होकर भूतप्राणियों के द्रोह में तत्पर है, श्रीराम से विमुख है और भोगों में आसक्ति रखता है? ॥२७२॥

ज्ञानमार्ग की कठिनता

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥

ज्ञान कहने में कठिन है, समझने में कठिन है और साधना करने में भी कठिन है। यदि 'घुणाक्षर' न्याय से कहीं ज्ञान प्राप्त भी हो जाय तो फिर भी उस में अनेकों विघ्न आते रहते हैं। ॥२७३॥

घुन द्वारा लकड़ी को खाने पर उसमें अनेकों रेखाएँ बन जाती हैं। यदि कोई रेखा केवल संयोग से अक्षर-जैसी प्रतीत होने लगे तो उसे 'घुणाक्षर' कहते हैं। इसी प्रकार बिना प्रयत्न के कोई घटना हो जाय तो उसे 'घुणाक्षर-न्याय' कहते हैं

भगवद्भजनके अतिरिक्त और सब प्रयत्न व्यर्थ है

खल प्रबोध जग सोध मन को निरोध कुल सोध।
करहिं ते फोटक पचि मरहिं सपनेहुँ सुख न सुबोध ॥

जो लोग दुष्टोंको ज्ञानका उपदेश देना, संसारका सुधार करना, मन का निरोध करना और कुलको शुद्ध करना चाहते हैं, वे व्यर्थ ही परिश्रम करते हुए मर जाते हैं। उन्हें स्वप्नमें भी सुख या सुन्दर ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ॥२७४॥

संतोष की महिमा

सोरठा

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥

स्वाभाविक संतोषके बिना क्या कोई शान्ति पा सकता है ? चाहे करोड़ों प्रकारसे जतन करते-करते कोई मर जाय, परंतु जल के बिना सूखी जमीनपर क्या कभी नाव चल सकती है? ॥२७५॥

मायाकी प्रबलता और उसके तरनेका उपाय

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि ॥

जिसे प्रबल माया मोहित न कर दे ऐसा देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी नहीं है। इस प्रकार मन में विचारकर उस महामाया के स्वामी श्रीरामका भजन करना चाहिये ॥ २७६ ॥

गोस्वामी जी की अनन्यता

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास ॥

एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा है और एक ही विश्वास है। एक राम रूपी श्याम वर्ण मेघ के लिये ही तुलसीदास चातक बना हुआ है ॥२७७॥

प्रेम की अनन्यता के लिए चातक का उदाहरण

जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामरूपी मेघ ! चाहे तुम ठीक समयपर बरसो चाहे जन्मभर उदासीन रहो-कभी न बरसो, परंतु इस चित्तरूपी चातक को तो तुम्हारी ही आशा है ॥२७८॥

चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि ॥

हे चातक ! तुलसीदास के मत से तो तू स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ जल भी मत पीना ! क्योंकि प्रेमकी प्यास का बढ़ते रहना ही अच्छा है; घटने से तो प्रेम की निष्ठा ही घट जायगी ॥ २७९ ॥

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥

अपने प्यारे मेघका नाम रटते-रटते चातककी जीभ लट गयी और प्यासके मारे सब अङ्ग सूख गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि तो भी चातकके प्रेमका रंग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता जाता है ॥२८०॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥

चातक के चित्त में अपने प्रियतम मेघ का दोष कभी आता ही नहीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इसीलिये प्रेम के अथाह समुद्र का कोई माप-तौल नहीं हो सकता ॥२८१॥

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मेघ कठोर ओले बरसाकर भले ही चातक की पाँखों के टुकड़े-टुकड़े कर दे, पर प्रेम के प्रण में चतुर चातक को अपने प्रेमका प्रण निबाहने में कभी भूल नहीं करनी चाहिये ॥२८२॥

उपल बरसि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥

मेघ कड़क-कड़ककर गर्जता हुआ ओले बरसाता है और कठोर बिजली भी गिरा देता है; इतने पर भी प्रेमी पपीहा मेघको छोड़कर क्या कभी किसी दूसरी ओर ताकता है ? ॥२८३॥

पबि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मेघ वज्र गिराकर, ओले बरसाकर, बिजली चमकाकर, कड़क-कड़ककर, वर्षा की झड़ी लगाकर
और आँधी के झकोरे देकर अपना बड़ा भारी रोष प्रकट करता है; परंतु चातक को अपने प्रियतम का दोष देखकर क्रोध नहीं आता बल्कि इसमें भी वह अपने प्रति मेघ का अनुराग देखकर उस पर रीझ जाता है ॥२८४॥

मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु ॥

आत्मसम्मानकी रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतमसे प्रे मका नित्य बढ़ना, तुलसीदासजी कहते हैं कि यह तीनों बातें तभी शोभा देती हैं जब चातक के मत का अनुसरण किया जाय ॥ २८५॥

तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेमके मान की रक्षा करना और प्रेम को भी निबाहना चातकको ही शोभा देता है। स्वाती नक्षत्र में भी यदि बूंद टेढ़ी पड़ती है तो वह उसका निरादर करके प्रेमके नियमको निबाहता है ॥२८६॥

तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि।
देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूँटक पानि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक एक ही एक माँगनेवाला है और बादल भी एक ही दानी है। बादल इतना देता है कि पृथ्वी के समस्त बर्तन भर जाते हैं; परंतु चातक केवल एक घूँट पानी ही लेता है ॥२८७॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि तीनों लोकों में और तीनों कालों में कीर्ति तो केवल अनन्य प्रेमी चातक के ही भाग्य में है, जिसकी दीनता संसार में कोई दूसरा स्वामी नहीं सुन पाया ॥२८८॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ा दानि ॥

पपीहा और मेघ के प्रेम का परिचय प्रत्यक्ष रूप में नए ही ढंग का है; याचक तो संसार भर का ऋणी होता है, परंतु इस प्रेमी पपीहे ने दानी मेघ को ही अपना ऋणी बना डाला ॥ २८९॥

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मागनेहि को बारिद बिन देइ ॥

पपीहा न तो मुँह से माँगता है, न जलका संग्रह करता है और न सिर झुका कर लेता ही है, ऐसे मानी माँगनेवाले चातक को मेघ के अतिरिक्त और कौन दे सकता है ? ॥२९०॥

को को न ज्यायो जगत में जीवन दायक दानि।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥

जगत् में इस जीवन दाता दानी मेघ ने किस-किस को नहीं जीवन दान दिया? परंतु अपने प्रेमी-याचक चातक के प्रेम

को पहचानकर तो यह मेघ स्वयं उसी का ऋणी हो गया ॥२९१॥

साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु ॥

साधन में सभी कष्ट सहते हैं और फल की प्राप्ति सभी के लिए सुखदायिनी होती है; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक जैसा प्रेम और मेघ जैसी बुद्धि विरले बुद्धिमान की ही होती है ॥२९२॥

चातक जीवन दायकहि जीवन समयँ सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥

चातक के जीवनदाता मेघ के प्रेम की सुन्दर रीति तो उसके जीवनकालमें ही देखने में आती है; परंतु चातक का प्रेम एवं विश्वास तो अज्ञेय है, तुलसीदासजी कहते हैं, वह तो किसी के देखने में ही नहीं आता ॥२९३॥

जीव चराचर जहँ लगे है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥

संसारमें जितने चर-अचर जीव हैं, मेघ उन सभी का हितकारी है; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि उस मेघ के प्रति स्वाभाविक स्नेह तो एक चातक के चित्त में बसा हुआ है ॥२९४॥

डोलत बिपुल बिहंग बन पिअत पोखरनि बारि।
सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि ॥

वनमें बहुत-से पक्षी रहते हैं और वह पोखरियों का जल पिया करते हैं; परंतु हे नित्य नवीन प्रेमी चातक ! चौदहों लोकों को अपने निर्मल यश से उज्ज्वल तो केवल एक तू ही करता है ॥२९५॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥

कोयल, मोर और चकोर मुँह के तो मीठे होते हैं; परंतु मन के बड़े मैले होते हैं, परंतु हे नवल चातक ! विश्वभर में निर्मल यश तो तेरा ही छाया हुआ है ॥२९६॥

बास बेस बोलनि चलनि मानस मंजु मराल।
तुलसी चातक प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥

हंस का निवास स्थान, वेष, बोली, चाल और मन सभी सुन्दर हैं, परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेम की विस्तृत और निर्मल कीर्ति तो चातक की ही है ॥२९७॥

प्रेम न परखिअ परुषपन पयद सिखावन एह।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरसै मेह ॥

मेघ इससे यह शिक्षा देता है कि प्रेमकी परीक्षा कठोरतासे नहीं करनी चाहिए तब भी संसार के लोग कहते हैं कि चातक पापी है, क्योंकि मेघ ऊसर तक में बरसता है ॥२९८॥

होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़ ॥

न तो चातक ही पापी है और न जीवनदाता मेघ ही मूर्ख है। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रह्लादकी दशा पर विचार करके समझो कि प्रेमका मार्ग कितना गूढ़ है। ॥२९९॥

गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ॥

अपनी-अपनी गरज सभी को होती है और उसी गरज को हृदय में रखकर लोग जहाँ-तहाँ गरज करते फिरते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि परंतु चतुर चातक तो एक मेघको ही सर्वोत्तम दानी समझकर केवल उसी का याचक बना ॥३०० ॥

चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर ॥

बाज के पंजे में फँसने पर चातक को अपने प्रेम के नियम की पीड़ा होती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरी हड्डियाँ और पाँख पृथ्वी के साधारण जल में पड़ेगा। ॥३०१॥

बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगी न खोंच ॥

किसी बहेलिये ने चातक को मार दिया, वह पुण्यसलिला गंगा जी में गिर पड़ा; परंतु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी चातक ने चोंच को उलटकर ऊपर उठा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक के प्रेमरूपी वस्त्र पर मरते दम तक कोई खरोंच नहीं लगी ॥३०२॥

अंड फोरि कियो चेटुवा तुष पर्यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्यो बाहिर बारि ॥

किसी चातकने अंडे को फोड़कर उसमें से बच्चा निकाला, परंतु अंडे के छिलके को पानी में पड़ा हुआ देखकर उस चतुर चातक ने तुरंत उसे पंजेसे पकड़कर जलसे बाहर फेंक दिया ॥३०३॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारहीं बार।
तात न तर्पन कीजिऐ बिना बारिधर धार ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि चातक अपने पुत्र को बारंबार यही सीख देता है कि हे तात ! प्यारे मेघ की धारा को छोड़कर अन्य किसी जलसे मेरा तर्पण न करना ॥ ३०४ ॥

सोरठा

जिअत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि।
सुरसरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल ॥

जीवित रहते तो चातक ने मेघ को छोड़कर दूसरे के सामने गर्दन नहीं झुकायी और मरते समय भी गंगाजल में अर्धांजलि तक नहीं माँगी ॥३०५॥

सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जौ अँचवै जल स्वाति को ॥

रे तुलसीदास ! सुन, पपीहे को तो केवल प्रेम की ही प्यास है; इसीलिये वह बरसात के चारों महीनों के जल को छोड़कर केवल स्वाति-नक्षत्र का ही जल पीता है ॥३०६॥

जाचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन ॥

चातक बारहों महीने मेघ से जल माँगा करता है, परंतु पीता है केवल स्वाति-नक्षत्र का ही जल। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने इससे यह समझा है कि चातक ऐसा करके अपने स्नेही मेघका मन रखता है। ॥३०७॥

दोहा

तुलसीं के मत चातकहि केवल प्रेम पिआस।

पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास ॥

तुलसीदास के मतानुसार तो चातक को केवल प्रेम की ही प्यास है; क्योंकि सारा जगत् इसको जानता है कि चातक केवल स्वाति-नक्षत्र का जल पीता तो है, परंतु याचक पूरा साल बना रहता है॥ ३०८॥

आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु मूल।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिलु अनुकूल ॥

चातक के हृदयरूपी मोतियों की क्यारी में प्रेम रूपी वृक्ष की जड़ लगी है। ईश्वर करे स्वाति-नक्षत्रका जल चातकके चित्तमें रहनेवाले प्रेम के लिये अनुकूल हो जाय। ॥ ३०९॥

उष्न काल अरु देह खिन मन पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ न रुचीं अन जल सींचे रूख ॥

गर्मियों के दिन थे, चातक का तन थका हुआ था, रास्ते चल रहा था, उसका शरीर बहुत गरम हो रहा था, मन में विचार किया की कुछ विश्राम पर लेना चाहिए, परंतु अनन्य प्रेमी चातक को मन की यह बात अच्छी नहीं लगी; क्योंकि वह वृक्ष अन्य जल से सींचे हुए थे ॥३१०॥

अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम ॥

'स्वाती के जल के अतिरिक्त अन्य जल से सींचे हुए वृक्ष की छाया से तो धूप को अच्छा मानना, तुलसीदासजी कहते हैं कि वैसे तो चातक, परंतु इस प्रकार प्रेम का निर्वाह करना केवल चतुर चातक का ही काम है ॥ ३११ ॥

एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह ॥

चातक का जो रात-दिन का प्रेम है, वही एकाङ्गी प्रेम है । तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसा एकाङ्गी प्रेम जिसके साथ लग जाता है, वही उसका आहार है, और वही उसका शरीर है ॥३१२॥

एकांगी अनुराग के अन्य उदाहरण

बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि बिष खानि।
तुलसी जस श्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥

जिसके दो जीभे हैं, काला शरीर और टेढ़ी चाल है तथा जो विष की खान है, ऐसा सर्प भी कानों से अपनी प्रशंसा सुनते ही प्रेम के वशीभूत होकर अपना सिर सौंप देता है ॥३१३॥

मृग का उदाहरण

आपु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ॥

चाहे कुरंगी का राग अर्थात वीणा का स्वर स्वयं बहेलिए का रूप धरकर हिरन को मार डाले। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि राग की ओर से हिरन का मन फिर जाय तो प्रेमरूपी वस्त्र में दाग लग जाए ॥३१४॥

सर्प का उदाहरण

तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधिहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ नब आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सर्प अपने प्रकाश से ब्याध को मणि भले ही दिखला दे, परंतु क्या मणि के वियोग में सर्प अन्धा नहीं हो जाता । ॥३१५॥

कमल का उदाहरण

जरत तुहिन लखि बनज बन रबि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ ॥

कमलों के वन को पाले से जलते हुए देखकर भी सूर्य उनकी उनकी अवहेलना करके चाहे भाग जाए, परंतु सूर्य के उदय होनेपर खिल जाना और अस्त होनेपर सिकुड़ जाना-कमलों का यह सहज स्वभाव नहीं मिट सकता ॥३१६॥

मछली का उदाहरण

देउ आपनें हाथ जल मीनहि माहुर घोरि।
तुलसी जिऐ जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि ॥

चाहे जल चाहे स्वयं अपने हाथसे विष घोल कर मछली को दे दे, तुलसीदासजी कहते हैं कि पर यदि मछली बिना जल जीवित रह जाय तो तुम कवियों को दोष दे सकते हो। ॥३१७॥

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥

मगर, पानी के साँप, मेढक और कछुए आदि जलचर जीवों का भी जल ही जीवन है और जल ही घर है, तुलसीदासजी कहते हैं कि परंतु जल के साथ सच्चा प्रेम तो केवल एक मछली का ही है। ॥३१८॥

मयूरशिखा बूटी का उदाहरण

तुलसी मिटे न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरिहूँ पलुहत गरजत मेह ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सच्चा और स्वाभाविक प्रेम मर मिटनेपर भी नहीं मिटता। बादलों के गरजते ही मयूरशिखा बूटी बिना जड़ की होने पर भी तुरंत पनप उठती है। ॥३१९॥

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥

सभी यह कहते हैं कि प्रेम और प्रियतम दोनों ही सुलभ हैं और सब ऐसा करते भी हैं परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि मछलीसे बढ़कर पवित्र तीनों लोकों में दूसरा कोई नहीं है ॥३२०॥

अनन्यता की महिमा

तुलसी जप तप नेम ब्रत सब सबहीं तें होइ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जप, तप, नेम तथा व्रत आदि सब साधन सभी से बन सकते हैं, परंतु मनुष्य बड़ाई तब पाता है, जब वह भगवान् को अपना एक मात्र इष्टदेव बना लेता है ॥३२१॥

गाढ़े दिन का मित्र ही मित्र है

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ।
ससि छबि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥

सुख के दिनों में चाहे कोई मित्र या शत्रु कुछ भी क्यों न हो, सच्चा मित्र तो वही है जो बुरे दिनों में प्रेम करता है। सूर्य अपने घर में चन्द्रमा की शोभा का हरण कर लेता है, फिर भी उसको सब 'मित्र' ही कहते हैं। ॥३२२ ॥

बराबरी का स्नेह दुःखदायक होता है

कै लघुकै बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिलें महाबिष होइ ॥

मित्र अपने से या तो छोटा हो या बड़ा हो, तभी कल्याण है; बराबरी का प्रेम तो दुःखदायक ही होता है। तुलसीदासजी कहते हैं जैसे घी और मधु बराबर परिमाण में मिल जानेसे भयंकर विष हो जाता है।। ३२३॥

मित्रता में छल बाधक है

मान्य मीत सों सुख चहैं सो न छुऐ छल छाहँ।
ससि त्रिसंकु कैकेइ गति लखि तुलसी मन माहँ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो कोई अपने सम्मान्य मित्रसे सुख चाहता हो तो उसे चाहिये कि वह चन्द्रमा, त्रिशंकु और

कैकेयी की गतिको मन में विचार कर छल की छाया को भी न छुए॥ ३२४॥

कहिअ कठिन कृत कोमलहुँ हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ ॥

सच्चा हितैषी उसी को कहना चाहिये, जो नरम या कठिन कैसा भी काम पड़ने पर स्वयं हठ करके सहायता करे। जैसे आँखों पर कोमल चोट होते हुए देखकर उसे पलकों पर रोक लिया जाता है और शरीर पर भारी चोट होते हुए देखकर उसे हाथों पर ओड़ लिया जाता है ॥३२५॥

वैर और प्रेम अंधे होते है

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि बारि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि वैर और प्रेम चारों आँखों से अंधे होते हैं। वैरी अपने द्वेषी के गुणों को नहीं देखता और प्रेमी अपने प्रेमास्पद का दोष नहीं देखता और न इनको उचित-अनुचित का ज्ञान होता है। जैसे सेवड़ा अर्थात वाममार्गी

साधक शराब का आदर करते हैं और पवित्र गङ्गाजल की निन्दा करते हैं। ॥३२६॥

दानी और याचक का स्वभाव

रुचै मागनेहि मागिबो तुलसी दानिहि दानु।
आलस अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु ॥

भिखमंगे को भीख माँगना और देनेवाले को दान देना ही अच्छा लगता है; अपने-अपने काम में न तो दोनों को आलस्य आता है, न उद्वेग अथवा झुंझलाहट ही होती है और न आश्चर्य ही होता है; क्योंकि प्रेम को ही इन सब भावों का ढक्कन समझना चाहिए ॥३२७॥

प्रेम और वैर ही अनुकुलता और प्रतिकूलता में हेतु हैं

अमिअ गारि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार।
प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गवाँर ॥

ब्रह्माजी ने अमृत और विष को निचोड़कर गाली को रचा है। इसलिये गाली, प्रेम और वैर दोनों की जननीहै। इस बात को बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं, गँवार नहीं ॥३२८॥

स्मरण और प्रिय भाषण ही प्रेम की निशानी है

सदा न जे सुमिरत रहहिं मिलि न कहहिं प्रिय बैन।
ते पै तिन्ह के जाहिं घर जिन्ह के हिएँ न नैन ॥

जो न तो सदा याद करते हैं और न कभी मिलने पर मीठे वचन ही बोलते हैं; उनके घर वह ही जाते हैं जिनके हृदय की आँखें फूटी होती हैं ॥३२९॥

स्वार्थ ही अच्छाई-बुराईका मानदण्ड हैं

हित पुनीत सब स्वारथहिं अरि असुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ॥

जब तक स्वार्थ है तब तक सभी वस्तुएँ पवित्र और हितकारी जान पड़ती हैं, बिना चाहकी वही चीजें अपवित्र और शत्रुके समान दिखायी देने लगती हैं। जैसे जब तक दाँत अपने मुँहमें रहते हैं, तबतक वे माणिकके समान मूल्यवान् होते हैं; परंतु वही टूटकर जब जमीनपर गिर पड़ते हैं, तब हाड़ कहलाते हैं ॥३३०॥

संसार में प्रेममार्ग के अधिकारी बिरले ही हैं

माखी काक उलूक बक दादुर से भए लोग।
भले ते सुक पिक मोरसे कोउ न प्रेम पथ जोग ॥

संसार में अधिकांश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेढक के सदृश हो गये हैं और जो कुछ भले लोग हैं, वे भी तोते, कोयल और मोरके सदृश हैं, प्रेम पथ पर चलने योग्य तो कोई भी नहीं है। ॥३३१॥

कलियुग में कपट की प्रधानता

हृदयँ कपट बर बेष धरि बचन कहहिं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों क्यों मिलिए मन खोलि ॥

जिनके हृदय में कपट रहता है परन्तु सुन्दर वेश धारण करते हैं और अच्छी तरह बना-बनाकर बातें करते हैं ऐसे आजकल के लोग तो मोर के समान हैं उनसे दिल खोलकर कैसे मिला जाय? ॥ ३३२ ॥

कपट अन्त तक नहीं निभता

चरन चोंच लोचन रँगौ चलौ मराली चाल।
छीर नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल ॥

बगुला चाहे अपने चरण, चोंच और आँखों को हंस की तरह रँग ले और हंस के जैसी चाल भी चलने लगे; परंतु जिस समय दूध और जल को अलग-अलग करने का अवसर आता है, उस समय उसकी पोल खुल जाती है ॥३३३॥

कुटिल मनुष्य अपनी कुटिलता को नहीं छोड़ सकता

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै कुटिल न सहज बिहाइ।
सो सहेतु ज्यों बक्र गति ब्याल न बिलहिं समाइ ॥

कुटिल मनुष्य अपने स्वभावको नहीं छोड़ सकता। यदि वह किसी सरलहृदय पुरुषसे सरल होकर मिलता भी है तो समझ लेना चाहिये कि उसके ऐसा करनेमें कोई-न-कोई हेतु अवश्य है। जैसे साँप टेढ़ी चालसे बिलमें नहीं घुस सकता ॥३३४ ॥

कृसधन सखहि न देब दुख मुएहुँ न मागब नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि पावकल पानी बीच ॥

सज्जन पुरुष थोड़ी पूँजीवाले मित्र से तो धन माँगकर उसे कष्ट नहीं देते और धनवान् नीच मनुष्य से वह मरने पर भी नहीं मांगते, तुलसीदास जी कहते हैं कि सज्जनों की स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे आग और पानी के बीच में रहना। ॥ ३३५॥

संग सरल कुटिलहि भएँ हरि हर करहिं निबाहु।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर बिनु राहु ॥

सरल और कुटिल का साथ हो जानेपर भगवान् विष्णु और शिव ही रक्षा करते हैं। राहु के ग्रहों की गणना में गिने जाने पर चतुर ब्रह्मा ने उसको बिना पेट का बना दिया ॥ ३३६ ॥

स्वभाव की प्रधानता

नीच निचाई नहिं तजइ सज्जनहू कें संग।
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भए न भुअंग ॥

सज्जन का संग होने पर भी नीच मनुष्य अपनी नीचता को नहीं छोड़ता। तुलसीदासजी कहते हैं कि चन्दन के वृक्षों में निवास करके भी साँप विषरहित नहीं हुए ॥३३७॥

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु ॥

भला आदमी अपनी भलाई से और नीच अपनी नीचता से ही शोभा पाता है। अमृत की प्रशंसा इसलिये की जाती है कि वह अमरत्व प्रदान करता है, और विष वही सराहनीय है जिससे मृत्यु हो जाए ॥३३८॥

मिथ्या माहुर सज्जनहि खलहि गरल सम साँच।
तुलसी छुअत पराइ ज्यों पारद पावक आँच ॥

सज्जन पुरुष के लिए असत्य विष है और दुष्ट के लिये सत्य विष के समान है। सज्जन असत्य को और दुष्ट सत्य को छूते ही वैसे ही भाग जाते हैं जैसे अग्नि की आँच लगते ही पारा उड़ जाता है ॥३३९॥

सत्संग और असत्संगका परिणामगत भेद

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहि संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥

संतों का संग मोक्ष का और विषयी पुरुषों का संग संसार बन्धन में पड़ने का मार्ग है। इस बात को संत, कवि, ज्ञानी और वेद-पुराणादि सद ग्रंथन सभी कहते हैं ॥३४०॥

सुकृत न सुकृती परिहरइ कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच ॥

पुण्यात्मा पुरुष अपने पुण्य को और नीच, कपटी मनुष्य अपने कपटको मरते दम तक नहीं छोड़ते। जटायु और मारीच मरते-मरते इसी बात की सीख दे गये हैं ॥३४१॥

सज्जन और दुर्जनका भेद

सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब साँसति सहर समान ॥

सज्जन पुरुष सुन्दर कपास और ऊख के पौधे के समान हैं और दुर्जन टाँकी और रुखानी के समान हैं। सज्जन और दुर्जन दोनों ही समान रूप से कष्ट सहते हैं; परंतु सज्जन

सहते हैं पराये हित के लिये और दुष्ट दूसरों के अहित के लिये ॥३४२॥

पिअहि सुमन रस अलिल बिटप काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल सुमति कुमति की बात ॥

भ्रमर फूलों का केवल रस ही पीते हैं और कोल-भील वृक्षको काटकर उसका फल खाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह दोनों वृक्षीं के सहारे ही जीते हैं परन्तु यह सुबुद्धि और कुबुद्धि की बात है ॥३४३॥

अवसर की प्रधानता

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिएँ का लाख।
दुइज न चंदा देखिऐ उदौ कहा भरि पाख ॥

आवश्यकता के समय मनुष्य यदि कौड़ी देने में भी चूक जाय तो फिर लाख रुपया देने से भी क्या होता है? द्वितीया के चन्द्रमा को न देखा जाय तो फिर पक्षभर चन्द्रमा उदय होता रहे, उससे क्या होगा? ॥३४४॥

भलाई करना बिरले ही जानते हैं

ग्यान अनभले को सबहि भले भलेहू काउ।
सींग सूँड़ रद लूम नख करत जीव जड़ घाउ ॥

बुराई करने का ज्ञान तो सभी को है, परंतु भलाई का ज्ञान तो कभी किसी भलेको ही होता है। मूर्ख जानवर अपने सींग, लँड, दाँत, पूँछ तथा नख इत्यादि से दूसरोंको चोट ही पहुँचाते हैं ॥३४५॥

संसारमें हित करनेवाले कम है

तुलसी जग जीवन अहित कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि पवन एक घन दानि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जगत् में जीवों का अहित करने वाले बहुत हैं, हित करनेवाला तो कहीं कोई एकाध ही जानो। सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, पवन सभी जल को सुखानेवाले हैं, देनेवाला तो एक बादल ही है ॥३४६॥

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।

जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥

अमृत तो केवल सुनने में ही आता है; परंतु विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता के सभी कार्य विकराल हैं। कौए, उल्लू और बगुले सर्वत्र दिखायी देते हैं; परंतु हंस तो केवल एक मानसरोवर में ही मिलते हैं ॥ ३४७॥

जलचर थलचर गगनचर देव दनुज नर नाग।
उत्तम मध्यम अधम खल दस गुन बढ़त बिभाग ॥

जल में रहनेवाले, स्थल पर रहने वाले और आकाश में विचरने वाले जीवों तथा देवता, राक्षस, मनुष्य और नाग-इन सब योनियों में उत्तम की अपेक्षा मध्यम, मध्यम की अपेक्षा अधम और अधम की अपेक्षा नीच-दुष्ट प्राणियों की संख्या दसगुनी अधिक हो जाती है ॥३४८॥

बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव।
मुए मार सुबिचार हत स्वारथ साधन एव ॥

बलिदान के बहाने देवताओं को और राज्य-कर के बहाने राजाओं को देख लिया। दोनों ही स्वार्थ साधनेवाले विचारशून्य और मरे को ही मारनेवाले हैं। ॥३४९॥

सुजन कहत भल पोच पथ पापि न परखइ भेद।
करमनास सुरसरित मिस बिधि निषेध बद बेद ॥

जैसे सज्जन पुरुष भले-बुरे दोनों ही मार्ग बताते हैं, परंतु पापी मनुष्य इस भेदको नहीं समझते वैसे ही वेद कर्मनाशा और गंगा जी के बहाने विधि और निषेध दोनों तरहके कर्मोंका वर्णन करते हैं ॥३५०॥

वस्तु ही प्रधान है, आधार नहीं

मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िअ का संग्रहिअ कहहु बिबेक बिचारि ॥

शराब से भरे हुए मणिमय पात्र और अमृत से पूर्ण मिट्टी के बर्तन को देखकर जरा विवेकपूर्वक विचार कर कहो कि इन दोनोंमें किसका त्याग करना चाहिये और किसका ग्रहण?॥ ३५१॥

प्रीति और वैर की तीन श्रेणियाँ

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि ॥

प्रीतिकी परीक्षा में उत्तम, मध्यम और नीच-इन तीनोंकी स्थिति क्रमशः पत्थर, बालू और जल के समान है; परंतु वैर इसके विपरीत है ॥३५२ ॥

जिसे सज्जन ग्रहण करते है,उसे दुर्जन त्याग देते हैं

पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ परमारथ पथ पाँच।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल सुनहु सिखावन साँच ॥

पुण्य, प्रेम, प्रतिष्ठा, प्राप्ति और परमार्थका पथ-इन पाँचों को सज्जनगण तो ग्रहण करते हैं और दुष्ट जन त्याग देते हैं। इस सच्ची सीख को सुनो ॥३५३॥

प्रकृति के अनुसार व्यवहारका भेद भी आवश्यक हैं

नीच निरादरहीं सुखद आदर सुखद बिसाल।

कदरी बदरी बिटप गति पेखहु पनस रसाल ॥

नीच लोग निरादर करने से और बड़े लोग आदर करने से सुखदायी होते हैं । इस बातको समझनेके लिये केले और बेर तथा कटहल और आम के पेड़ों की दशा विचारनीय है ॥३५४॥

अपना आचरण सभी को अच्छा लगता है

तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अपना आचरण किसको अच्छा नहीं लगता ? जो नित्य लहसुन खाता है, उसको लहसुन की दुर्गन्ध नहीं आती ॥३५५॥

भाग्यवान् कौन है ?

बुध सो बिबेकी बिमलमति जिन्ह के रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ॥

वह निर्मल बुद्धिवाले, ज्ञानवान् और बुद्धिमान् हैं जिनका न किसी में राग है, न किसी के प्रति क्रोध है; किंतु साधुजन जिन्हें सुहृद् कहकर सराहना करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं वह बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥३५६॥

साधुजन किसकी सराहना करते है

आपु आपु कहँ सब भलो अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो सुजन सराहिअ सोइ ॥

स्वयं अपने लिये सभी भले हैं, कोई-कोई अपनों की भी भलाई करनेवाले होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सबकी भलाई करनेवाला है, साधुजनों के द्वारा उसीकी सराहना होती है। ॥३५७॥

संग की महिमा

तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा और बुरी संगति से बुरा हो जाता है। लोहा नाव में लगने से सबको पार उतारनेवाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देनेवाला बन जाता है, वही लोहा तलवार और तीर में लगने से जीवों का प्राणघातक हो जाता है।३५८॥

गुरु संगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम।
चार पदारथ में गनै नरक द्वारहू काम ॥

बड़ों की संगति से मनुष्य बड़ा हो जाता है और छोटों की संगती से उसी का नाम छोटा हो जाता है। अर्थ, धर्म और मोक्षके साथ रहने से नरक के साक्षात् द्वार काम की भी गिनती चार पदार्थों में होती है ॥३५९॥

तुलसी गुरु लघुता लहत लघु संगति परिनाम।
देवी देव पुकारिअत नीच नारि नर नाम ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच मनुष्योंकी सङ्गतिका यह परिणाम होता है कि बड़े महत्त्ववाले पुरुष भी लघुताको प्राप्त हो जाते हैं। नीच स्त्री-पुरुषोंके नाम होनेसे देवी-देवता भी लघुतासे ही पुकारे जाते हैं ।। ३६० ॥

तुलसी किएँ कुसंग थिति होहिं दाहिने बाम।
कहि सुनि सकुचिअ सूम खल गत हरि संकर नाम ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि कुसंगति में रहने से अच्छे भी बुरे हो जाते हैं। हरि, शंकर आदि भगवान के नाम परम कल्याणकारी हैं, परंतु वही नाम कंजूस और दुष्ट पुरुषों के रख दिये जाते हैं तो लोग उन नामों को कहते-सुनते सकुचाते हैं ॥३६१॥

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो गया मगह के पास ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि कुसंगति में निवास करके जो सज्जनता की आशा करता है, उसकी आशा निराशामात्र है। मगध के पास बसने से पवित्र विष्णुपद तीर्थ का नाम भी 'गया' पड़ गया ॥३६२॥

राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगा जी और सत्संगति दोनों समान हैं। गंगा जी में कैसा भी जल पड़े और सत्संगति में कैसा भी दुर्जन मनुष्य जाय, उसको ये दोनों अपने ही समान पवित्र बना देती हैं। परंतु इनकी प्राप्ति श्रीरामकृपासे ही सुलभ है। ॥३६३॥

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जल लखहिं सुलच्छन लोग ॥

ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र-ये सभी बुरा या अच्छा संग पाकर जगत् में बुरे या अच्छे पदार्थ बन जाते हैं। इस रहस्य को अच्छे लक्षणवाले बुद्धिमान् लोग ही जान पाते हैं ॥३६४॥

जनम जोग में जानिअत जग बिचित्र गति देखि।
तुलसी आखर अंक रस रंग बिभेद बिसेषि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे अक्षर, अंक, रस और रंग में विशेष भेद हो जाता है, ऐसे ही मनुष्य के जन्मकाल में भिन्न-भिन्न ग्रहों का योग होता है; उसी को देखकर जगत् की विचित्र गति जानी जाती है। ॥३६५॥

आखर जोरि बिचार करु सुमति अंक लिखि लेखु।
जोग कुजोग सुजोग मय जग गति समुझि बिसेषु ॥

अक्षरों को जोड़कर विचार करो और हे सुमति ! अंकों को लिखकर हिसाब लगाओ तो भलीभांति समझ जाओगे कि जगत् की गति योग से कुयोग और सुयोग मयी हो जाती है ॥३६६॥

मार्ग-भेद से फल-भेद

करु बिचार चलु सुपथ भल आदि मध्य परिनाम।
उलटि जपें 'जारा मरा' सूधें'राजा राम' ॥

विचार करके सुमार्ग पर चलो, ऐसा करने से आदि, मध्य और परिणाममें भला-ही-भला है। जैसे बिना विचारे उलटा जपनेसे जो शब्द 'जारा' और 'मरा' हो जाता है वही विचारपूर्वक सीधा जपनेसे 'राजा राम' हो जाता है ॥३६७॥

भले के भला ही हो, यह नियम नहीं है

होइ भले के अनभलो होइ दानि के सूम।

होइ कपूत सपूत कें ज्यों पावक में धूम ॥

भलेके बुरा, दानीके कंजूस और सुपूतके कुपूत वैसे ही उत्पन्न हो जाता है जैसे पवित्र तेजोमय अग्नि से काला धुआँ निकलता है ॥३६८॥

विवेक की आवश्यकता

जड़ चेतन गुन दोष मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंक गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥

विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोष मय रचा है; परंतु संतरूपी हंस दोष रूपी जल को त्यागकर गुणरूपी दूध को ग्रहण करते हैं॥३६९॥

सोरठा

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥

रेशम कीड़े से होता है, उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसीलिये अत्यन्त अपवित्र कीड़ोंको भी सब लोग प्राणों के समान पालते हैं ॥३७०॥

दोहा

जो जो जेहिं जेहिं रल मगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रसगुन दोष बिचारिबो रसिक रीति पहिचानि ॥

जो-जो जिस-जिस रस में मग्न होता है, वह उसी में संतोष मानकर आनन्दित होता है। परंतु रसके गुण-दोष का विचार करना तो रसिकोंकी रीतिकी पहचान है ॥३७१॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥

यद्यपि शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें उजियाला और अँधेरा बराबर रहता है, तो भी विधाता ने उनके नाम में भेद कर दिया है। शुक्लपक्ष को चन्द्रमा का पोषक जानकर उसे जगत् में यश दिया अर्थात् यशरूप 'शुक्लपक्ष' नाम रखा और कृष्णपक्ष को चन्द्रमा का शोषक जानकर उसे अयश दिया अर्थात् 'कृष्णपक्ष' नाम रखा ॥३७२॥

कभी-कभी भले को बुराई भी मिल जाती है

लोक बेदहू लौं दगो नाम भले को पोच।
धर्मराज जम गाज पबि कहत सकोच न सोच ॥

लोक और वेद तक में भी भले का बुरा नाम प्रसिद्ध है। धर्मराज को यम और बिजली को वज्र कहने में किसी को सोच अथवा संकोच नहीं होता ॥३७३॥

सज्जन और दुर्जनकी परीक्षा के भिन्न-भिन्न प्रकार

बिरुचि परखिऐ सुजन जन राखि परखिऐ मंद।
बड़वानल सोषत उदधि हरष बढ़ावत चंद ॥

संतोंकी परख तो हमारी रुचिके बिना ही हो जाती है, परंतु दुष्ट मनुष्यकी परीक्षा कुछ दिन पास रखकर करनी पड़ती है। बड़वानल समुद्र में बहुत दिन रहने के बाद समुद्र के जल को सोखता है, परंतु चन्द्रमा दर्शन देते ही समुद्रके हर्ष को बढ़ाता है। ॥३७४॥

नीच पुरुष की नीचता

प्रभु सनमुख भएँ नीच नर होत निपट बिकराल।
रबिरुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल ॥

मालिक के अनुकूल होने पर नीच मनुष्य एकदम भयंकर बन जाते हैं। जैसे दर्पण और स्फटिक सूर्य का रुख अपनी तरफ देखकर आग की लपटें उगलने लगते हैं ॥३७५ ॥

सज्जन की सज्जनता

प्रभु समीप गत सुजन जन होत सुखद सुबिचार।
लवन जलधि जीवन जलद बरषत सुधा सुबारि ॥

मालिक के पास रहने से सज्जन पुरुष सबको सुख देने वाले हो जाते हैं, इस बात को अच्छी तरह विचार लो। बादल का जीवन खारे समुद्र का जल है; परंतु वह दूसरों के लिये सुन्दर अमृतके समान जल बरसाता है। ॥३७६॥

नीच निरावहिं निरस तरु तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि नीच मनुष्य रसहीन वृक्षों को तो खेत से उखाड़ फेंकते हैं और रसवाले ऊख को सींचते हैं; परंतु बादल विष और अमृत दोनों प्रकार के वृक्षों का समानरूपसे पोषण करता है ॥३७७॥

बरषि बिस्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास ॥

बादल तो बरसकर समस्त विश्व को प्रसन्न करता है और सबके ताप, दुःख और प्यास को हरण करता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि उसके जल से जवासा जल जाय तो इसमें बादलका कोई दोष नहीं है ॥३७८॥

अमर दानि जाचक मरहिं मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहिं ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि दाता अमर रहते हैं और याचक मरते हैं, बार-बार मरते हैं और बार-बार दान लेते हैं। फिर भी वह पापी याचक दाता को सदा दोष ही देते रहते हैं ॥३७९॥

नीच निन्दा

लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़।
गज गुन मोल अहार बल महिमा जान कि राड़ ॥

हाथी को देखकर कुत्ता सूखे हाड़ को लेकर दौड़ जाता है। वह मूर्ख हाथी के गुण, मूल्य, आहार और बल की महिमा को क्या जाने? ॥३८०॥

सज्जन महिमा

कै निदरहुँ कै आदरहुँ सिंघहि स्वान सिआर।
हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार ॥

कुत्ते और सियार सिंह का निरादर करें, चाहे आदर करें, हाथीको पछाड़ने वाले सिंह को इसमें कोई हर्ष या शोक नहीं होता ॥३८१॥

दुर्जनो का स्वभाव

ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच।

निंदहि बलिल हरिचंद को का कियो करन दधीच ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य नीच प्रकृति के हैं, वह स्वयं तो द्वार पर खड़े हुए भिक्षुक को कुछ भी नहीं दे सकते, परंतु बलि और हरिश्चन्द्रकी निन्दा करते हैं और कहते हैं कि कर्ण और दधीचिने कौन सा बड़ा काम किया था? ॥३८२॥

नीच की निन्दा से उत्तम पुरुषों का कुछ नहीं घटता

ईस सीस बिलसत बिमल तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहें लघुता लहै न गंग ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिन श्री गंगा जी की निर्मल और तरल तरंगे भगवान् श्रीशंकर के मस्तक पर शोभा पाती हैं, उन श्रीगंगा जी की महिमा में कुत्ते और सरावगियों के कहनेसे कुछ कमी नहीं हो जाती ॥३८३॥

तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि।
काक अभागें हगि भर्यो महिमा भई कि थोरि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस देवमन्दिर के बनवानेमें लाखों-करोड़ों रुपये लगे हों, उसमें यदि अभागे कौए ने बीट कर दी तो इससे उस मन्दिरकी महिमा थोड़े ही घट गयी।॥ ३८४ ॥

गुणोंका ही मूल्य है,दूसरोंके आदर-अनादरका नहीं

निज गुन घटत न नाग नग परखि परिहरत कोल।
तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़े न मोल ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जंगली कोल लोग गजमुक्ता को परखकर फेंक देते हैं,इससे उसका गुण घट नहीं जाता। इसके विपरीत भगवान् श्रीकृष्णने गुंजा के गहने बनाकर पहने, परंतु इससे उनकी कीमत बढ़ नहीं गयी ॥३८५॥

श्रेष्ठ पुरुषोंकी महिमाको कोई नहीं पा सकता

राकापति षोड़स उअहिं तारा गन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥

चाहे चन्द्रमा समस्त तारागण को साथ लेकर और सोलह कलाओं से पूर्ण होकर उदय हो जाय और साथ ही सभी पहाड़ों में आग भी लगा दी जाय, तो भी सूर्यके उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती ॥३८६॥

दुष्ट पुरुषों द्वारा की हुई निन्दा-स्तुतिका कोई मूल्य नहीं है

भलो कहहिं बिनु जानेहूँ बिनु जानें अपबाद।
ते नर गादुर जानि जियँ करिय न हरष बिषाद ॥

जो लोग बिना ही जाने-सुने किसी को भला बताने लगते हैं और बिना ही जाने किसी की निन्दा करने लगते हैं, उन मनुष्यों को चमगादड़ समझकर उनके कहने से अपने मन में हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिये ॥ ३८७ ॥

डाह करनेवालों का कभी कल्याण नहीं होता

पर सुख संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिन के भागते चलै भलाई भागि ॥

दूसरे की सुख-सम्पत्ति को देख-सुनकर जो मूर्ख मनुष्य बिना ही आग के जलने लगते हैं, तुलसीदास जी कहते हैं कि उनके भाग्य से भलाई भागकर चली जाती है ॥३८८॥

दूसरों की निन्दा करनेवालों का मुहँ काला होता है

तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ।
तिनके मुहँ मसि लागिहैं मिटहि न मरिहै धोइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो दूसरों की कीर्ति को मिटाकर अपनी कीर्ति चाहते हैं, उनके मुख पर ऐसी कालिख लगेगी, जो चाहे वे उसे धो-धोकर मर जायें, कभी नहीं छूटेगी ॥३८९॥

मिथ्या अभिमानका दुष्परिणाम

तन गुन धन महिमा धरम तेहि बिनु जेहि अभिमान।
तुलसी जिअत बिडंबना परिनामहु गत जान ॥

सुन्दर शरीर, सद्गुण, पर्याप्त धन, बड़ाई और धर्म में निष्ठा इनके न होनेपर भी जिसको मिथ्या अभिमान है।

तुलसीदास जी कहते हैं, उसका जीवन विडम्बनामात्र है और उसका परिणाम भी गया-बीता ही समझना चाहिये ॥३९० ॥

नीचा बनकर रहना ही श्रेष्ठ है

सासु ससुर गुरु मातु पितु प्रभु भयो चहै सब कोइ।
होनी दूजी ओर को सुजन सराहिअ सोइ ॥

सास, ससुर, गुरु, माता-पिता और मालिक इत्यादि होना तो सभी चाहते हैं; परंतु जो लोग इनके दूसरी तरफ के अर्थात् बहू, दामाद, शिष्य, कन्या, पुत्र और सेवक बनना चाहते हैं, वही सज्जन सराहने योग्य हैं ॥३९१॥

सज्जन स्वाभाविक ही पूजनीय होते है

सठ सहि साँसति पति लहत सुजन कलेस न कायँ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिऐ गंडकि सिला सुभायँ ॥

दुष्टलोग बड़े-बड़े कष्ट सहकर तब कहीं प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं; परंतु सज्जनों को कुछ भी शारीरिक क्लेश नहीं होता।

जैसे साधारण पत्थर जब गढ़-छुलकर मूर्ति के रूपमें आते हैं तब पूजे जाते हैं; परंतु गण्डकी नदी के पत्थर स्वाभाविक ही पूजनीय होते हैं ॥३९२॥

भूप-दरबारकी निन्दा

बड़े बिबुध दरबार तें भूमि भूप दरबार।
जापक पूजत पेखिअत सहत निरादर भार ॥

देवताओं के दरबार से भी पृथ्वी के राजाओं के दरबार बड़े हैं; क्योंकि इनमें भगवान् के नाम का जप करनेवाले और भगवान् की पूजा करनेवाले भी बड़ा भारी अपमान सहते देखे जाते हैं ॥३९३॥

छल-कपट सर्वत्र वर्जित है

बिनु प्रपंच छल भीख भलि लहिअ न दिएँ कलेस।
बावन बलि सों छल कियो दियो उचित उपदेस ॥

बिना छल-कपटके मिलनेवाली भीख ही उत्तम है, किसी को क्लेश पहुँचाकर भीख नहीं लेनी चाहिये। भगवान् ने

वामनरूप धरकर बलि से छल किया और इसी बहाने सब को उपदेश दिया ॥३९४॥

भलो भले सों छल किएँ जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति बलि बावन गति सोइ ॥

भला आदमी यदि किसी भले आदमी से छल कर बैठता है तो उसे फिर जन्मभर उससे दबकर रहना पड़ता है। भगवान् लक्ष्मीपति ने वृन्दा से छल किया था, इससे वह तुलसी के रूप में भगवान के सिर पर विराजमान रहती है; और भगवान् वामनजी ने राजा बलि से छल किया, तो उनकी भी वही गति हुई ॥ ३९५॥

बिबुध काज बावन बलिहि छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि बस भे तदपि मन की गइ न गलानि ॥

भगवान् वामनजी ने अपने मन में अच्छा समझकर ही देवताओं के कार्य के लिये बलि को छला, फिर अपना स्वामित्व छोड़कर उसके वश में भी हो गए अर्थात् उसके द्वारपाल तक बन गए तो भी उनके मन की ग्लानि नहीं मिटी ॥३९६॥

जगत् में सब सीधोंको तंग करते है

सरल बक्र गति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु।
तुलसी सूधे सूर ससि समय बिडंबित राहु ॥

सीधी-टेढ़ी चाल चलने वाले पाँच ग्रहों में से तो किसीको राहु जल्दी आँख उठाकर देखता भी नहीं, तुलसीदासजी कहते हैं कि परंतु सीधी चालवाले सूर्य और चन्द्रमा को समय पर वही राहु त्रास देता है ॥३९७॥

दुष्ट-निन्दा

खल उपकार बिकार फल तुलसी जान जहान।
मेढुक मर्कट बनिक बक्र कथा सत्य उपखान ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि इस बात को तमाम दुनिया जानती है कि दुष्टों के साथ उपकार करने का फल बुरा होता है। सत्योपाख्यान नामक ग्रन्थ में लिखी हुई मेढक, बंदर, वणिक् और बगुले की कथाएँ इसके उदाहरण हैं। ॥३९८॥

तुलसी खल बानी मधुर सुनि समुझिअ हियँ हेरि।

राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि दुष्ट की मीठी वाणी सुनकर अपने हृदय में अच्छी तरह विचारकर उसका मतलब समझना। मूढ़ दासी मंथरा छलभरी मीठी वाणी से ही रामजी के राज्याभिषेक में बाधक हुई थी॥३९९॥

जोंक सूधि मन कुटिल गति खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो सो हित सोषनिहारु ॥

जोंक की चाल टेढ़ी होती है, परंतु वह मन से सीधी होती है; क्योंकि वह हानिकारक रक्त को ही चूसती है। परंतु दुष्टों को इससे विपरीत समझना चाहिए। क्योंकि वह तो दूसरोंके हित का ही शोषण करनेवाले होते हैं ॥४००॥

नीच गुड़ि ज्यों जानिबो सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिएँ गिरि परत महि खैंचत चढ़त अकास ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच आदमियों को अच्छी तरह जान-सुनकर गुड्डी के समान समझना चाहिये। जैसे गुड्डी ढील देने से पृथ्वी पर गिर पड़ती है और खींचने से आकाशमें चढ़ जाती है ॥ ४०१॥

भरदर बरसत कोस सत बचै जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल बचन कर हए गए न पराइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सौ कोस तक बरसती हुई घनी वर्षा में भी जल की बूंदों से बिना भीगें बच निकलते हैं, वह भी दुष्टों के वचन-बाणों से मारे जाते हैं, भाग नहीं सकते। ॥४०२॥

पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह अब देखिबी रिसानि ॥

तेली तिलों को स्नेही जानकर भी उन्हें कोल्हू में डालकर पेरता है। यह तो प्रेम की रीति देखी, अब क्रोध की रीति देखनी है ॥४०३ ॥

सहबासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रबीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि बेचारे पक्षी, हिरन और मछली किसके साथ मिल-जुलकर अपना जीवन बितायें? एक स्थान में रहनेवाले-एक ही आकाश में उड़नेवाले बाज, एक

ही वनमें रहनेवाले सिंह और एक ही जल में रहनेवाली बड़ी मछलियाँ या ग्राह आदि तो इन्हें कच्चे ही निगल जाते हैं और पुरजन पाक विद्या में निपुण होनेके कारण इन्हें पकाकर खा जाते हैं ॥४०४॥

जासु भरोसें सोइऐ राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीस ॥

विश्वास करके जिसकी गोदमें सिर रखकर सोया जाय, तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि वही कुचाल करे तो फिर उस कुचाल से भगवान् ही रक्षा कर सकते हैं ॥४०५॥

मार खोज लै सौंह करि करि मत लाज न त्रास।
मुए नीच ते मीच बिनु जे इन कें बिस्वास ॥

जो शपथें खा-खाकर मित्र बन जाते हैं और फिर घर का भेद जानकर एकमत करके मित्र को मार डालते हैं, जिन्हें अपने ऐसे कुकर्मों से न तो लज्जा आती है और न जिन्हें ईश्वर या धर्म का डर ही लगता है-ऐसे नीचों का जो विश्वास करते हैं, वह नीच बिना मौत ही मारे जाते हैं ॥४०६॥

परद्रोही परदार रत परधन पर अपबाद।

ते नर पावँर पापमय देह धरें मनुजाद ॥

जो मनुष्य दूसरों से वैर रखते हैं तथा जिनकी परायी स्त्री में, पराये धन में और परनिन्दा में आसक्ति है, वह पामर पापमय मनुष्य नर-देह धारण किये हुए राक्षस ही हैं ॥४०७॥

कपटी को पहचानना बड़ा कठिन है

बचन बेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि।
सूपनखा मृग पूतना दसमुख प्रमुख बिचारि ॥

किसी भी पुरुष या स्त्री के बाहरी वेष और वचन से कैसे पता लग सकता है कि इसका मन मलिन है? शूर्पणखा, मारीच, पूतना और रावण आदि के उदाहरणों पर विचार करो अर्थात संसार में दम्भी लोगों को उनके वेष-भूषा और बातचीतसे पहचानना कठिन है ॥ ४०८ ॥

कपटी से सदा डरना चाहिये

हँसनि मिलनि बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह।

छुवत जो सकुचइ सुमति सो तुलसी तिन्ह कि छाहँ ॥

जिसका हँसना, मिलना और बोलना बड़ा ही मधुर है, परंतु जिनके मन में कड़ए कारना में भरे हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं, उन नीचों की छाया को छूने में भी जो सकुचाता है, वही बुद्धिमान् है ॥४०९॥

कपट ही दुष्टता का स्वरूप है

कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परबास।
कियो दुराउ चहौ चातुरीं सो सठ तुलसीदास ॥

जो कपटरूपी लोहे की हजारों सूइयों को वचनरूपी ऊपर के कपड़े में चतुराई से बाँधकर छिपाना चाहता है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह दुष्ट है ॥४१०॥

कपटी कभी सुख नहीं पाता

बचन बिचार अचार तन मन करतब छल छूति।
तुलसी क्यों सुख पाइऐ अंतरजामिहि धूति ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके वचनों में, विचारमें, आचरण में, शरीर में, मन में और कर्मों में छूत लगी हुई है, वह इस प्रकार अन्तर्यामी परमात्मा को ठगकर कैसे सुख पा सकता है? ॥ ४११॥

सारदूल को स्वाँग करि कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिऐ कीरति बिजय बिभूति ॥

लोग सिंह का-सा स्वाँग रचकर कुत्तों जैसे काम करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि परन्तु इस पर भी कीर्ति, विजय और ऐश्वर्य चाहते हैं ! ॥४१२॥

पाप ही दुःखका मूल है

बड़े पाप बाढ़े किए छोटे किए लजात।
तुलसी ता पर सुख चहत बिधि सों बहुत रिसात ॥

बड़े-बड़े पाप तो बढ़-बढ़कर किये और छोटे पाप करने में लजाता है, तुलसीदास जी कहते हैं कि इस पर भी मनुष्य सुख चाहता है और विधाता पर क्रोध करता है ॥४१३॥

अविवेक ही दुःखका मूल है

देस काल करता करम बचन बिचार बिहीन।
ते सुरतरु तर दारिदी सुरसरि तीर मलीन ॥

जिनको देश, काल, कर्ता, कर्म और वचन का विचार नहीं है, वह कल्पवृक्ष के नीचे रहने पर भी दरिद्री और देवनदी श्रीगंगा जी के तीरपर बसकर भी पापी बने रहते हैं ॥४१४ ॥

साहस ही कै कोप बस किएँ कठिन परिपाक।
सठ संकट भाजन भए हठि कुजाति कपि काक ॥

दुःसाहस या क्रोध के वश होकर कर्म करने से उसका फल बहुत ही कठोर होता है। नीच और दुष्ट बालि और जयन्त इसी प्रकार हठपूर्वक कर्म करके संकटके पात्र हुए ॥४१५॥

राज करत बिनु काजहीं करहिं कुचालि कुसाजि।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज ॥

जो राजा राज्य करते हुए बिना ही कारण बुरी चाल चलते हैं तथा बुरे काम करने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे रावणकी तरह अपने समाजसहित नष्ट हो जायँगे। ॥४१६॥

राज करत बिनु काजहीं ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जइहै बारह बाट ॥

जो क्रूर राजा राज्य करते हुए बिना ही करण बुरे काम करने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह दुर्योधन की तरह बारह बाट हो जायँगे। ॥४१७॥

विपरीत बुद्धि बिनाश का लक्षण है

सभा सुयोधन की सकुनि सुमति सराहन जोग।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहहिं प्रपंची लोग ॥

दुर्योधन की सभा में शकुनि ही श्रेष्ठ, बुद्धिमान और सराहनीय माना जाता था। गुरु द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, पितामह भीष्म और भगवान् श्रीकृष्ण को तो सभा जन प्रपञ्ची कहते थे॥४१८ ॥

पांडु सुअन की सदसि ते नीको रिपु हित जानि।
हरि हर सम सब मानिअत मोह ग्यान की बानि ॥

और पाण्डवों की सभा में सब लोग उन्हीं द्रोण और भीष्म को, यह भलीभाँति जानते हुए भी कि यह हमारे शत्रु कौरवोंके मित्र हैं, भगवान् विष्णु और शिव के समान मानते थे। अज्ञान और ज्ञान की बानिका यही भेद है। ॥४१९॥

हित पर बढ़इ बिरोध जब अनहित पर अनुराग।
राम बिमुख बिधि बाम गति सगुन अघाइ अभाग ॥

जब अपने हित करनेवाले के प्रति शत्रुता और हित का नाश करने वाले पर प्रेम बढ़ जाता है, तब समझना चाहिये कि भगवान् श्रीरामजी उसके विमुख हैं, विधाता की गति उसके प्रतिकूल है और यह उसके पूर्णरूपसे अभागी होने का शकुन है ॥४२०॥

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥

स्वभाव से ही हित करनेवाले मित्र, गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर उसके अनुसार कार्य नहीं

करता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की अवश्य ही हानि होती है ॥ ४२१॥

जोश में आकर अनधिकार कार्य करनेवाला पछताता है

भरुहाए नट भाँट के चपरि चढ़े संग्राम।
कै वै भाजे आइहै के बाँधे परिनाम ॥

भाटों के भड़काने में जोश में आकर यदि नट लोग सहसा लड़ाई में चले जाये तो उसका यही परिणाम होगा कि या तो वे रण से भाग जायेंगे या कैद कर लिये जायेंगे ॥४२२॥

समय पर कष्ट सह लेना हितकर होता है

लोक रीति फूटी सहहिं आँजी सहइ न कोइ।
तुलसी जो आँजी सहइ सो आँधरो न होइ ॥

लोगों की रीति यह है कि वह आँखों के फूटने का कष्ट तो सह लेते हैं; परंतु अंजन लगाने का कष्ट नहीं सहते। तुलसीदासजी कहते हैं जो अंजन लगाने का कष्ट सह लेता है, वह अंधा नहीं होता ॥४२३॥

भगवान् सबके रक्षक है

भागें भल ओड़ेहुँ भलो भलो न घालें घाउ।
तुलसी सब के सीस पर रखवारो रघुराउ ॥

यदि कोई तुम पर वार करे तो भाग जानेमें ही तुम्हारी भलाई है अथवा आत्मरक्षा के लिये डटकर उस वारको रोकना भी अच्छा है; परंतु बदले में उस पर चोट करना अच्छा नहीं है; क्योंकि रक्षा करनेवाले श्रीरघुनाथजी तो सबके सिर पर मौजूद ही हैं ॥४२४॥

लड़ना सर्वथा त्याज्य है

सुमति बिचारहिं परिहरहिं दल सुमनहुँ संग्राम।
सकुल गए तनु बिनु भए साखी जादौ काम ॥

पत्तों और फूलों के द्वारा भी लड़ाई करना बुरा है, यह विचारकर बुद्धिमान् लोग उसे बिलकुल त्याग देते हैं। इस बात के साक्षी यादव और कामदेव हैं। पत्तों के द्वारा परस्पर लड़कर यादवों का सारा कुल नष्ट हो गया और पुष्प-

बाणोंसे शिवजी पर प्रहार करनेवाला कामदेव शरीर हीन हो गया ॥४२५॥

ऊलह न जानब छोट करि कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह जरत धनिक धन धाम ॥

कलह को छोटी बात नहीं मानना चाहिए; कलह का परिणाम बहुत भयंकर होता है। गरीब की छोटी-सी झोंपड़ी में आग लगती है, परंतु परिणाम में उससे बड़े-बड़े धनियों के धन-धाम जल जाते हैं। ॥४२६ ॥

क्षमा का महत्व

छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहिं सीख।
अबिचल श्रीपति हरि भए भूसुर लहै न भीख ॥

हे मन ! क्षमा और क्रोध के गुण-दोषों को सुनकर उनसे शिक्षा ग्रहण करो। श्रीहरि तो अविचल लक्ष्मी जी के स्वामी हुए, परंतु ब्राह्मणों को भीख भी माँगे नहीं मिलती ॥४२७॥

कौरव पांडव जानिऐ क्रोध छमा के सीम।
पाँचहि मारि न सौ सके सयौ सँघारे भीम ॥

कौरवों को क्रोध की और पाण्डवों को क्षमा की सीमा समझना चाहिये; परंतु क्रोध के कारण सौ कौरव पाँच पाण्डवों को नहीं मार सके। इधर अकेले भीम ने सौ के सौ कौरवों का संहार कर दिया ॥४२८॥

क्रोध की अपेक्षा प्रेमके द्वारा वश करना ही जीत है

बोल न मोटे मारिऐ मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो जीतें हारि निहारु ॥

किसी को मोटे बोल न मारो परंतु रोटी की मोटी मार मारो। इस तरह की अपनी हार को हजारों जीत के समान समझो और उस तरह के वाक्य-बाणों के प्रहार से जीत जाने पर भी हार ही समझो॥४२९॥

जो परि पायँ मनाइए तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिऐ जहँ जीतेहूँ हारि ॥

जिन के पैरों पर पड़कर मनाना कर्तव्य है, उनसे बहुत ही सोच-विचार कर रूठना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं

कि जहाँ जीतने में भी हार ही होती है, वहाँ जीतना नहीं चाहिये ॥४३०॥

जूझे ते भल बूझिबो भली जीति तें हार।
डहकें तें डहकाइबो भलो जो करिअ बिचार ॥

यदि विचार किया जाय तो यही प्रतीत होता है कि लड़ने की अपेक्षा आपस में समझौता कर लेना अच्छा है, जीत से हार अच्छी है और किसी को ठगने की अपेक्षा ठगाना अच्छा है। ॥४३१॥

जा रिपु सों हारेहुँ हँसी जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिऐ समयँ सँभारिअ आपु ॥

जिस शत्रु से हारने में हँसी हो तथा जीतने में पाप और दुःख हो, उससे मौका पड़ने पर स्वयं ही सँभलकर झगड़ा मिटा लेना चाहिये ॥४३२॥

जो मधु मरै न मारिऐ माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ ॥

जो शहद से ही मर जाय उसे जहर देकर कभी नहीं मारना चाहिये। परशुराम जी सारे जगत को जीतकर भी श्रीरामचन्द्रजी की मधुमयी वाणी से हार गये और श्रीरघुनाथजी परशुरामजी के सामने अपनी हार मानकर भी जीत गये। ॥४३३॥

बैर मूल हर हित बचन प्रेम मूल उपकार।
दो हा सुभ संदोह सो तुलसी किएँ बिचार ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि हितके वचन वैरकी जड़को काटनेवाले हैं और हित करना तो प्रेमकी जड़ ही है। एवं विचार करनेपर जान पड़ता है कि हाहा खाना (विनती करना) यह तो शुभका समूह ही है ॥ ४३४॥

रोष न रसना खोलिऐ बरु खोलिअ तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ बचन बिचारि ॥

क्रोध में आकर जीभ नहीं खोलनी चाहिये, इससे अच्छा तो तलवार खींचना है। सोच विचार कर ऐसे वचन बोलने चाहिए, जो सुनने में मीठे हों और परिणाम में हितकारी हों। ॥४३५॥

मधुर बचन कटु बोलिबो बिनु श्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव का का कररत काग ॥

मधुर बोलना और कड़वा बोलना बिना ही श्रम के भाग्य, और अभाग्य को निमन्त्रण देना है। कोयल की 'कुह', 'कुह की मधुर ध्वनि करती है।और कौवा 'काँव', 'काँव' की कर्कश ध्वनि करता है ॥४३६॥

पेट न फूलत बिनु कहें कहत न लागइ ढेर।
सुमति बिचारें बोलिऐ समुझि कुफेर सुफेर ॥

किसी बात के न कहने से पेट नहीं फूल जाता और कहने से बातों का ढेर नहीं लग जाता। अत: समय-असमय को समझकर और शुद्ध बुद्धि के द्वारा विचार करके ही यथायोग्य वचन बोलने चाहिए ॥४३७॥

वीतराग पुरुषों की शरण ही जगत् के जंजालसे बचनेका उपाय है

छिद्यो न तरुनि कटाच्छ सर करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिन की देह को जगत कवच करि लेहु ॥

जिनका हृदय न तो युवतियों के कटाक्ष-बाणों से घायल हुआ और जिनकी न तो विषयों में कठिन आसक्ति ही है। तुलसीदास जी कहते हैं उनके शरीर को जगत् में अपनी रक्षा के लिये कवच बना लेना चाहिये ॥४३८॥

शूरवीर करनी करते है,कहते नहीं

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ॥

शूरवीर तो युद्ध में शूरवीरता का प्रदर्शन करते हैं, अपने मुख से कहकर अपना परिचय नहीं देते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर जन ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं ॥४३९॥

अभिमान के बचन कहना अच्छा नहीं

बचन कहे अभिमान के पारथ पेखत सेतु।
प्रभु तिय लूटत नीच भर जय न मीचु तेहिं हेतु ॥

अर्जुन ने सेतुबन्ध को देखकर अभिमान पूर्वक कहा मैं उस समय होता तो सारा पुल बाणों से ही बाँध देता। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के परिवार की स्त्रियों को नीच भरों ने लूट लिया, अर्जुन उनको जीत नहीं सके और इस अपमानसे उनका मरण हो गया ॥४४० ॥

दीनों की रक्षा करनेवाला सदा बिजयी होता है

राम लखन बिजई भए बनहुँ गरीब निवाज।
मुखर बालि रावन गए घरहीं सहित समाज ॥

गरीबों पर कृपा करने वाले श्रीराम-लक्ष्मण वन में रहते हुए भी विजयी हुए, परंतु बकवादी बालि और रावण अपने घर में ही सारे समाजसहित नष्ट हो गये। ॥४४१॥

नीति का पालन करनेवालेके सभी सहायक बन जाते हैं

खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नयपाल।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहद बंधु कियो काल ॥

नीति के पालने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने वन में भी पक्षियों और पशुओं को अपना सच्चा मित्र बना लिया; परंतु बालि और रावण ने घर में ही अपने हितैषी भाइयों को अपना काल बना लिया ॥४४२॥

सराहने योग्य कौन है

लखइ अघानो भूख ज्यों लखइ जीतिमें हारि।
तुलसी सुमति सराहिऐ मग पग धरइ बिचारि ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो भूख में भी अपने को तृप्त के समान समझता है और जीत में भी अपनी हार मानता है-इस प्रकार जो खूब विचार-विचार कर मार्ग पर पैर रखता है, वह बुद्धिमान् ही सराहनेयोग्य है। ॥ ४४३ ॥

अवसर चूक जानेसे बड़ी हानि होती है

लाभ समय को पालिबो हानि समय की चूक।
सदा बिचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक ॥

अनुकूल समय आने पर काम बना लेना ही लाभ है और समयपर चूक जाना ही हानि है। इसीलिये सुन्दर बुद्धिवाले लोग इस बातका सदा विचार किया करते हैं, क्योंकि अच्छा और बुरा समय दो ही दिन का होता है। ॥४४४॥

समय का महत्व

सिंधु तरन कपि गिरि हरन काज साइँ हित दोउ।
तुलसी समयहिं सब बड़ो बूझत कहुँ कोउ कोउ ॥

श्रीहनुमानजी का समुद्रको लाँघना और द्रोण-पर्वतको लाना-ये दोनों काम अपने स्वामी के हित के लिये उन्होंने ठीक समय पर ही किये थे। तुलसीदासजी कहते हैं समय पर काम करने से ही सब बड़े होते हैं, इस रहस्य को कहीं कोई-कोई ही जानते हैं। ॥४४५ ॥

तुलसी मीठी अमी तें मागी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिनु काललकूट तें नीच ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि समय पर यदि माँगने से मृत्यु भी प्राप्त हो जाए तो वह अमृत से भी अधिक मीठी प्रतीत होती है। परंतु बिना अवसर के अमृत अथवा चन्द्रमा

भी मिलें तो वह कालकूट जहर से भी अधिक बुरे प्रतीत होते हैं। ॥४४६॥

विपत्तिकाल के मित्र कौन है ?

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम बिबेक।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि धीरज, धर्म, विवेक, सत्साहित्य, साहस और सत्य का व्रत अथवा एकमात्र श्रीराम का भरोसा विपत्ति काल के यही मित्र हैं ॥४४७॥

समरथ कोउ न राम सों तीय हरन अपराधु।
समयहिं साधे काज सब समय सराहहिं साधु ॥

श्रीराम के समान तो कोई सामर्थ्यवान् नहीं है और सीताहरणके समान भयंकर अपराध कोई क्या करेगा? इसपर भी श्रीराम ने कालानुसार समय पर ही सब काम किये। इस कारण साधु जन समय की सराहना करते हैं ॥४४८॥

तुलसी तीरहु के चलें समय पाइबी थाह।

धाइज न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि नदी या सरोवर के किनारे-किनारे चलने से ही समयपर उनकी थाह मिल जायगी; अगाध तालाब या नदियोंकी थाह लेनेके लिये दौड़कर उनके अंदर घुस नहीं जाना चाहिये अर्थात उचित समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥४४९॥

होनहार की प्रबलता

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पै ताहि तहाँ लै जाइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी होनी होती है, उसी प्रकार की सहायता प्राप्त हो जाती है। या तो वह स्वयं उसके पास आती है या उसे वहाँ ले जाती है। ४५०॥

परमार्थ प्राप्ति के चार उपाय

कै जूझीबो कै बूझिबो दान कि काय कलेस।
चारि चारु परलोक पथ जथा जोग उपदेस ॥

परलोक के लिए सुन्दर चार मार्ग हैं और इनका यथायोग्य उपदेश किया गया है- ज्ञान-अर्जन करना, युद्ध करना, दान देना और शरीर से कष्ट सहकर सेवा करना ॥४५१॥

विवेक की आवश्यकता

पात पात को सींचिबो न करु सरग तरु हेत।
कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत ॥

कल्पवृक्ष से हित प्राप्त करने करने के लिए, पत्ते-पत्ते को मत सींचा करो, ऐसा करोगे तो ऐसा टेढ़ा और कडवा फल फलेगा जो तुमको अचेत कर देगा ॥ ४५२ ॥

विश्वास की महिमा

गठिबँध ते परतीति बड़ि जेहिं सबको सब काज।
कहब थोर समुझब बहुत गाड़े बढ़त अनाज ॥

गठबन्धन से भी विश्वास बड़ा है, जिससे सब लोगों के सभी कार्ध सिद्ध होते हैं। कहनेमें सब बात छोटी-सी है, परंतु

समझने से बहुत बड़ी है। जिस प्रकार अनाज के थोड़े-से दाने मिट्टी में गाड़ दिये जाते हैं, परंतु वही अनाज पैदा होने पर बहुत बढ़ जाता है॥४५३॥

अपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहिं निज भीति।
फरइ सकल मन कामना तुलसी प्रीति प्रतीति ॥

स्त्रियाँ अपने घर की दीवार पर अपने रंग भरे हाथों को दीवार पर छापकर उनको पूजती हैं और उसी से उनकी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि यह प्रेम और विश्वास का ही फल है ॥ ४५४ ॥

बरषत करषत आपु जल हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु ॥

सूर्य स्वयं [पृथ्वीपर अपार] जल बरसाता है और सोखता है; परंतु लोगोंके दिये हुए अर्घ्य से बड़ा प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि साधु और देवता सब स्नेह और सम्मान ही चाहते हैं ॥ ४५५ ॥

बारह नक्षत्र व्यापारके लिये अच्छे हैं

श्रुति गुन कर गुन पु जुग मृग हर रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु गएहुँ न जाइहि काउ ॥

श्रवण नक्षत्र से तीन नक्षत्र (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष), हस्त नक्षत्र से तीन नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती), 'पु' से आरम्भ होनेवाले दो नक्षत्र (पुष्य, पुनर्वसु) और मृगशिरा, अश्विनी, रेवती तथा अनुराधा-इन बारह नक्षत्रों में धन, जमीन और धरोहर का लेन-देन करो; ऐसा करनेसे धन जाता हुआ प्रतीत होने पर भी नहीं जायगा ॥४५६॥

चौदह नक्षत्रों में हाथसे गया हुआ धन वापस नहीं मिलता

ऊगुन पूगुन बि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिरि चढ़इ न हाथ ॥

'उ' से आरम्भ होने वाले तीन नक्षत्र- उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद , 'पू' से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, वि- विशाखा, अज- रोहिणी, कृ-कृत्तिका, म-मघा, आ - , भ- भरणी, अ- अश्लेषा और मू-मूल को भी इन्हीं के साथ समझ लो-इन चौदह नक्षत्रोंमें हरा हुआ, धरोहर रखा हुआ, गाड़ा हुआ

तथा उधार दिया हुआ धन फिर लौटकर हाथ नहीं आता ॥ ४५७ ॥

कौन-सी तिथियाँ कब हानिकारक होती हैं ?

रबि हर दिसि गुन रस नयन मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी होइ कुजोग बिचार ॥

द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया, सप्तमी- ये सातों तिथियाँ यदि क्रम से रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवारको पड़ें तो यह सभी कामों को बिगाड़ने वाली होती हैं और यह कुयोग समझा जाता है ॥४५८॥

कौन-सा चन्द्रमा घातक समझना चाहिये ?

ससि सर नव दुइ छ दस गुन मुनि फल बसु हर भानु।
मेषादिक क्रम तें गनहिं घात चंद्र जियँ जानु ॥

मेष के प्रथम, वृष के पाँचवें, मिथुन के नवें, कर्क के दूसरे, सिंह के छठे, कन्या के दसवें, तुला के तीसरे, वृश्चिक के सातवें,
धनु के चौथे, मकर के आठवें, कुम्भ के ग्यारहवें और मीन राशि के बारहवें चन्द्रमा पड़ जायँ तो उसे घातक समझना चाहिए ॥४५९॥

किन-किन वस्तुओंका दर्शन शुभ है ?

नकुल सुदरसनु दरसनी छेमकरी चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहिं मन अभिलाष ॥

नेवला, मछली, दर्पण, क्षेमकरी चिड़िया, चकवा तथा नीलकंठ-इन्हें दसों दिशाओं में से किसी ओर भी देखना शुभ शकुन है और इससे मन की अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। ॥४६० ॥

सात वस्तुएँ सदा मङ्गलकारी हैं

सुधा साधु सुरतरु सुमन सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अमृत, साधु, कल्पवृक्ष, पुष्प, सुन्दर फल, सुहावनी बात और श्रीजानकीनाथजी की भक्ति- यह सात सुन्दर मंगलकारी शकुन हैं। ॥४६१॥

श्रीरघुनाथजी का स्मरण सारे मङ्गलोंकी जड़ है

भरत सत्रुसूदन लखन सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज सुभ साज सब मिलिहि सुमंगल साथ ॥

भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण सहित श्रीरघुनाथजी का स्मरण करके सब शुभ साधनों के द्वारा कार्य किया जाए तो साथ-ही-साथ सुन्दर मंगल भी मिलता जायगा ॥४६२॥

यात्रा के समय का शुभ स्मरण

राम लखन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान।
लच्छि लाभ लै जगत जसु मंगल सगुन प्रमान ॥

विश्वामित्र जी सहित श्रीराम-लक्ष्मण का स्मरण करके यात्रा करो और लक्ष्मी का लाभ लेकर जगत् में यश लो। यह शकुन सच्चा मंगलमय है ।। ४६३ ॥

वेद की अपार महिमा

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किएँ बिचार।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि विचार करने पर यही सिद्ध होता है कि वेद की महिमा अतुलनीय है, जिसकी निन्दा करने से स्वयं भगवान् का बुद्धावतार भी निन्दित हो गया, यह सबको विदित है ॥४६४॥

बुध किसान सर बेद निज मतें खेत सब सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम मध्यम नीच ॥

पण्डितगण किसान हैं और वेद सरोवर है, इसी से जल ले लेकर सब अपने-अपने मतरूपी खेतको सींचते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि इनमें कौन-सा खेत उत्तम है और कौन-सा मध्यम या नीच है इसका पता खेती देखकर लगाना चाहिये।। ४६५॥

धर्म का परित्याग किसी भी हालत में नही करना चाहिये

सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिअ कहि करि गए सुजान ॥

बुरे वचनोंको और सब प्रकार के कष्टों को सह लो तथा मिथ्या अपमान को भी अंगीकार कर लो, तुलसीदासजी कहते हैं कि परंतु धर्म को मत छोड़ो। श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुष ऐसा ही उपदेश और आचरण कर गये हैं। ॥४६६॥

दूसरे का हित ही करना चाहिये, अहित नहीं

अनहित भय परहित किएँ पर अनहित हित हानि।
तुलसी चारु बिचारु भल करिअ काज सुनि जानि ॥

दूसरे का हित करने में तो अपने अहित का केवल भय ही रहता है; परंतु दूसरे का अहित करने में अपने हित का नाश होता ही है। इसलिये तुलसीदासजी कहते हैं कि यहाँ

यही विचार सुन्दर और मंगलकारक है कि सोच-समझकर काम करना चाहिये ॥४६७ ॥

प्रत्येक कार्य की सिद्धि में तीन सहायक होते हैं

पुरुषारथ पूरब करम परमेस्वर परधान।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहिं काज अनुमान ॥

पुरुषार्थ, पूर्वकर्म और प्रधानतया परमात्मा की कृपा-इन्हीं तीनों के अवलम्बनक से तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे नदीको तैरकर पार किया जाता है, वैसे ही सभी कामों में अनुमान कर लेना चाहिये ॥ ४६८॥

नीति का अवलम्बन और श्रीरामजी के चरणोंमें प्रेम ही श्रेष्ठ है

चलब नीति मग राम पग नेह निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिअ सो बसन जो न पखारें फीक ॥

नीति पर चलना और श्रीराम जी के चरणों में प्रेम का निर्वाह करना ही उत्तम है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वस्त्र वही

पहनना चाहिये, जिसका रंग धोने पर भी फीका न पड़े। ॥४६९॥

दोहा चारु बिचारु चलु परिहरि बाद बिबाद।
सुकृत सीवँ स्वारथ अवधि परमारथ मरजाद ॥

उपर्युक्त दोहे को भली प्रकार से विचार लो और वाद-विवाद छोड़कर चलो। बस, यही पुण्य की सीमा है, यही स्वार्थ की अवधि है और यही परमार्थ की भगवत्प्राप्ति की मर्यादा है ॥४७०॥

विवेकपूर्वक व्यवहार ही उत्तम है

तुलसी सो समरथ सुमति सुकृती साधु सयान।
जो बिचारि ब्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि वही पुरुष सामर्थ्यवान्, बुद्धिमान, पुण्यात्मा, साधु और चतुर है जो आय के अनुमान से ही व्यय करता है और जगत् में विचारपूर्वक व्यवहार करता है। ॥४७१॥

जाय जोग जग छेम बिनु तुलसी के हित राखि।

बिनुऽपराध भृगुपति नहुष बेनु बृकासुर साखि ॥

जगत् में योग की रक्षा किये बिना अर्थात् उसका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करनेसे वह नष्ट हो जाता है। तुलसीदास के हितैषी श्रीराम निरपराधों की रक्षा करते ही हैं। इसमें परशुराम, नहुष, वेन और वृकासुर साक्षी हैं। ॥४७२॥

नेम से प्रेम बड़ा है

बड़ि प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग तें छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तें बड़ो नेम तें प्रेम ॥

बाहरी ग्रन्थि-बन्धन की अपेक्षा विश्वास बड़ा है। योग से क्षेम बड़ा है। स्वामी की अपेक्षा श्रेष्ठ सेवक बड़ा है और नियमों से प्रेम बड़ा है। ॥४७३॥

किस-किस का परित्याग कर देना चाहिये

सिष्य सखा सेवक सचिव सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिअ पुनि परिहरिअ पर मन रंजन पाँच ॥

यदि अपना शिष्य, मित्र, नौकर, मन्त्री और सुन्दर स्त्री, यह पाँचों अपने को छोड़कर दूसरे के मन को प्रसन्न करने लगे हैं तो पहले तो इसकी जाँच करनी चाहिये और फिर इन्हें छोड़ देना चाहिये ॥४७४॥

सात वस्तुओं को रस बिगड़नेके पहले ही छोड़ देना चाहिये

नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरें रंग रस निरस बिषाद बिकार ॥

नगर, स्त्री, भोजन, मन्त्री, सेवक, मित्र और घर-इनकी सरसता नष्ट होने से पहले ही इन्हें छोड़ देने में शोभा और आनन्द है। नीरस होने पर इनका त्याग करने में तो शोक और अशान्ति ही होती है ॥४७५॥

मन के चार कण्टक हैं

तूठहिं निज रुचि काज करि रूठहिं काज बिगारि।
तीय तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि ॥

स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र जब अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने में ही संतुष्ट होते हैं और मनमानी करके आप ही काम बिगाड़ लेते हैं तथा फिर रूठ भी जाते हैं, तब यह चारों मन को काँटे के समान चुभने लगते हैं ।। ४७६ ॥

कौन निरादर पाते हैं ?

दीरघ रोगी दारिदी कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर जोग ॥

दीर्घ रोगी, दरिद्र, कटु वचन बोलनेवाले और लालची लोग तुलसीदास जी कहते हैं कि प्राण के समान प्यारे होने पर भी -यह चारों निरादरके योग्य ही हो जाते हैं। ॥४७७॥

पाँच दुःखदायी होते है

पाही खेती लगन बट रिन कुब्याज मग खेत।
बैर बड़े सों आपने किए पाँच दुख हेत ॥

दूसरे गाँवमें खेती करना, राह चलते मनुष्य में आसक्ति, अधिक ब्याज की कर्जदारी, रास्ते का खेत और अपनी अपेक्षा बड़े से वैर-यह पाँचों काम करने से दुःख के कारण होते हैं ॥४७८॥

समर्थ पापी के वैर करना उचित नहीं

धाइ लगै लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सों बयर जानि बिसाही मीचु ॥

जिस तरह लोहा चाव से दौड़कर चुम्बक के लग जाता है, उसी तरह नीच मनुष्य नम्रता प्रदर्शित कर खींच लेता है। इसी प्रकार समर्थ पापी से वैर करने को खरीदी हुई मौत समझो ॥ ४७९ ॥

शोचनीय कौन है

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ॥

वह गृहस्थ शोचनीय है, जो मोहवश शास्त्रोक्त कर्ममार्ग का त्याग कर देता है और वह संन्यासी शोचनीय है, जो संसार में आसक्त और ज्ञान-वैराग्य से हीन है॥४८०॥

परमार्थ से विमुख ही अंधा है

तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि।
अंध कहें दुख पाइहै डिठिआरो केहि डीठि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य स्वार्थ के तो शरण हो रहा है और परमार्थ की ओर जिसने पीठ कर रखी है, वह अन्धा कहने पर तो मन में दुःख पायेगा, परंतु किस आँख को लेकर उसे आँख वाला कहा जाय? ॥४८१॥

मनुष्य आँख होते हुए भी मृत्यु को नहीं देखते

बिन आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीचु न माय ॥

बिना आँखवाली जूती पैर को देखकर पहचान लेती है; किंतु इन नर-नारियों के चार-चार आँखें होनेपर भी इन्हें मौत और माया नहीं सूझती ॥ ४८२ ॥

मूढ़ उपदेश नहीं सुनते

जौ पै मूढ़ उपदेस के होते जोग जहान।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्याम सुजान ॥

यदि मूर्ख मनुष्य संसार में उपदेश के योग्य होते तो परम चतुर भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन को क्यों न समझा सके ? ॥४८३॥

<u>सोरठा</u>

फुलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ॥

यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेंत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार यदि ब्रह्मा के समान भी गुरु मिल जायँ तो भी मूर्ख के हृदय में ज्ञान नहीं होता ॥४८४ ॥

<u>दोहा</u>

रीझि आपनी बूझि पर खीझि बिचार बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह महोदधि मीन ॥

अपनी ही बुद्धि पर जिनकी प्रीति है और जिनका रोष नासमझी से युक्त होता है; वह मोह के महान् समुद्र में मछली बने हुए लोग किसी का उपदेश नहीं मानते॥४८५॥

बार-बार सोचने की आवश्यकता

अनसमुझें अनुसोचनो अवसि समुझिऐ आपु।
तुलसी आपु न समुझिऐ पल पल पर परितापु ॥

किसी बात को न समझने पर उसे बार-बार सोचना चाहिये, ऐसा करने से वह बात अपने-आप समझ में आ जायगी। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह स्वयं समझ में नहीं आयी तो क्षण-क्षण में दुःख होगा ॥४८६॥

मूर्ख शिरोमणि कौन हैं ?

कूप खनत मंदिर जरत आएँ धारि बबूर।

बवहिं नवहिं निज काज सिर कुमति सिरोमनि कूर ॥

जो लोग घर जलने पर कुँआ खोदते हैं, शत्रु के चढ़ आने पर बबूल के वृक्ष रोपना शुरू करते हैं और स्वार्थसाधन के लिये सिर नवाते फिरते हैं, वह मूर्ख मूल्क शिरोमणि तथा निकम्मे हैं ॥४८७ ॥

ईश्वरविमुख की दुर्गति ही होती है

निडर ईस तें बीस कै बीस बाहु सो होइ।
गयो गयो कहैं सुमति सब भयो कुमति कह कोइ ॥

ईश्वर का डर छोड़कर चाहे कोई निश्चय ही रावण के समान प्रभावशाली क्यों न हो जाय, बुद्धिमान् लोग तो उस ईश्वरविमुख को नष्ट हुआ ही कहेंगे; कोई कुबुद्धिवाला ही उसे उन्नति को प्राप्त हुआ बता सकता है ॥४८८॥

जान-बूझकर अनीति करनेवाले को उपदेश देना व्यर्थ हैं

जो सुनि समुझि अनीति रत जागत रहे जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सब कुछ सुन-समझकर भी अनीति में लगा रहता है और जागते हुए भी सोया रहता है, उसको उपदेश देना अथवा जगाना उचित नहीं है ॥४८९॥

बहु सुत बहु रुचि बहु बचन बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो यह अग्यान अपार ॥

जिनके बहुत पुत्र हों, जिनकी अनेकों इच्छाएँ हों, जो तरह-तरह की बातें बनाते हों, जिनके आचरण और व्यवहार अनेकों प्रकारके हों, उनकी भलाई चाहना महान् मूर्खता है ॥४९०॥

जगत् के लोगोंको रिझानेवाला मूर्ख हैं

लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुँआ सो सठ तुलसीदास ॥

जो आदमी अपना भला होने की आशा से लोगों को रिझाता रहता है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वह मूर्ख आकाश का तकिया बनाना चाहता है ॥४९१॥

अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह ॥

क्या श्रीजानकी जी अपयश के योग्य थीं और क्या श्रीकृष्ण ने मणि की चोरी की थी? अत: तुलसीदास जी कहते हैं कि सब लोगों को प्रसन्न करना उतना ही कठिन है, जितना जोर से खींचकर बारीक सूत कातना ! ॥ ४९२ ॥

तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपाउ।
तौ कि जानकिहि जानि जियँ परिहरते रघुराउ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि लोगों के संदेह को दूर करने का कोई उपाय होता तो क्या श्रीरघुनाथ जी श्रीजानकीजी को अपने मन में सत्य जानते हुए भी उनका त्याग करते? ॥ ४९३ ॥

प्रतिष्ठा दुःख का मूल है

मागि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि ॥

जब तक मधुकरी माँगकर खाते थे, तब तक पैर पसार कर सोते थे। परंतु इधर यह पापमयी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, इसी से झंझट भी बढ़ गया। ॥४९४॥

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान।
उपजत ही अभिमान भो खोवत मूढ़ अपान ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मूर्ख जनता का सम्मान भेड़ चाल के समान है, परंतु इस सम्मान का मिलना शुरू होते ही अभिमान उत्पन्न हो जाता है, जिससे मूर्ख लोग अपनी स्थिति खो बैठते हैं ॥४९५॥

भेड़ चाल का उदाहरण

लही आँखि कब आँधरे बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ॥

दुनिया बहराइच को दौड़ी जाती है, परंतु कोई इस बातका पता नहीं लगाता कि वहाँ जाकर कब किस अंधेने आँख पायी, कौन बाँझ कब लड़का लेकर आयी और कब किस कोढ़ीने कञ्चन-सी काया प्राप्त की?

ऐश्वर्य पाकर मनुष्य अपनेको निडर मान बैठते हैं

तुलसी निरभय होत नर सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति लखि ब्रत अछत तनु सुख संपति गति पाइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुना जाता है, स्वर्ग में जाकर जीव निर्भय हो जाता है। परंतु ऐसी दशा तो यहाँ इस शरीर के रहते हुए भी सुख-सम्पत्ति और ऊँची पदवी प्राप्त करने पर देखी जाती है ॥४९७॥

तुलसी तोरत तीर तरु बक हित हंस बिडारि।
बिगत नलिन अलि मलिन जल सुरसरिहू बढ़िआरि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि गंगा जी भी बढ़ जानेपर अपने किनारे के वृक्षोंको तोड़ डालती हैं, बगुलों के लिये हंसों को भगा देती हैं, कमल और भौंरों से रहित और मलिन जलवाली हो जाती हैं। ॥४९८॥

अधिकरी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद।
सुधा सदन बसु बारहें चउथें चउथिउ चंद ॥

बुरा समय आने पर भले अधिकारियों को भी बुरा ही समझिये। चन्द्रमा अमृत का भण्डार होने पर भी आठवें, बारहवें और चौथे स्थान में पड़नेपर एवं भादों सुदी चौथ के दिन देखने पर हानिकारक हो जाता है ॥ ४९९ ॥

नौकर स्वामी की अपेक्षा अधिक अत्याचारी होते है

त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुग अवसर करहिं कुठाट।
सूधे टेढ़े सम बिषम सब महँ बारहबाट ॥

अवसर पड़ने पर मालिक यदि एक प्रकार से बुराई करता है तो उसके अनुगामी सेवक तीन प्रकार से करते हैं। वह सीधे सज्जनोंसे भी टेढ़ा बर्ताव करते हैं, समता में भी विषमता करते हैं और सब कामों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं ॥५००॥

प्रभु तें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ।
कर तें होत कृपानको कठिन घोर घन घाउ ॥

मालिक की अपेक्षा मालिक के परिचारक वर्ग विशेष दुःखदायी होते हैं। इस बात को विचारकर राजा को चाहिए कि वह स्वयं अपनी प्रजा को संभाले। क्योंकि हाथ की चोट

की अपेक्षा हाथमें पकड़ी हुई तलवार की चोट बुहत ही कठिन और भयङ्कर होती है। ॥५०१॥

ब्यालहु तें बिकराल बड़ ब्यालफेन जियँ जानु।
वहि के खाए मरत है वहि खाए बिनु प्रानु ॥

अपने हृदय में अफीम को साँप से भी अधिक भयंकर समझना चाहिए। साँप के काटनेसे तो आदमी मरता ही है, परंतु अफीम को खाकर वह प्राणहीन हो जाता है ॥५०२॥

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥

कार्य कारण से कठोर होता ही है इसमें मेरा दोष नहीं है; क्योंकि हड्डी से बना हुआ वज्र हड्डी से अधिक कठोर और पत्थर से उत्पन्न लोहा पत्थर से भी भयानक और कठोर होता है ॥५०३॥

काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहारि ॥
रबिहि राउ राजहिं प्रजा बुध ब्यवहरहिं बिचारि ॥

काल ईश्वर का रुख देखता है; सूर्य काल का अनुगमन करता है, राजा सूर्य का अनुसरण करता है, प्रजा राजा का अनुकरण करती है और बुद्धिमान् पुरुष सब व्यवहार विचारकर करते हैं ॥५०४॥

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग।
कहिअ कुबास सुबास तिमि काल महीस प्रसंग ॥

जैसे निर्मल और पवित्र वायु दुर्गन्ध युक्त और सुगन्ध युक्त वस्तुओं के संसर्ग से दुर्गन्धित और सुगन्धित कही जाती है, वैसे ही अच्छे या बुरे राजा के संसर्ग से काल भी अच्छा या बुरा कहा जाता है। ॥५०५॥

भलेहु चलत पथ पोच भय नृप नियोग नय नेम।
सुतिय सुभूपति भूषिअत लोह सँवारित हेम ॥

जिस प्रकार राजा की आज्ञा, नीति तथा कानून के कारण ही भले लोगों को भी बुरे मार्ग में चलने में डर लगता है। उसी प्रकार सोना लोहे द्वारा सँवारे जाने पर ही सुन्दर स्त्री और सुन्दर राजा को भी भूषित करता है ॥५०६॥

राजा को कैसा होना चाहिये ?

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥

माली, सूर्य और किसान के समान नीति में निपुण राजा इस कलियुग में प्रजा के सौभाग्य से कभी-कभी होंगे ॥५०७॥

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सूर्य जब जल को खींचता है, तब किसीको भी पता नहीं लगता, परंतु जब बरसाता है, तब सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार सूर्य-सरीखा राजा प्रजा के सौभाग्य से ही होता है। ॥५०८॥

राजनीति

सुधा सुजान कुजान फल आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजा हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि ॥

सुन्दर दूध, घी आदि अमृत, उत्तम अन्न, कुत्सित अन्न, लताओंके फल, आम आदि पेड़ों के फल-इन सबको खाद्य रूप में समान जानकर अच्छे राजा साम, दान आदि नीतियों के अनुसार प्रजा के हित की इच्छा से प्रजा से 'कर' के रूपमें ग्रहण कर लेते हैं । ॥५०९॥

पाके पकए बिटप दल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं नरेस त्यों करि बिचारि मन बीच ॥

जो अधपके फल ही तोड़कर घर में पकाता है और नीच वह है जो अधीर होकर पत्तों को ही नोच डालता है। इसी प्रकार उत्तम राजा को भी मन में विचारकर तभी कर वसूल करना चाहिये, जब फसल पक जाय, जिससे कि किसान आसानीसे दे सके; जो बिना ही फसल पके कर उगाहता है, वह मध्यम है और अकाल पड़नेपर भी पीड़ा पहुँचाकर किसान से कर उगाहने वाला स्वार्थी राजा नीच है ॥५१०॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाइ फल होइ भल तरु काटें अपराधु ॥

गुरु, मित्र, अच्छे मालिक और साधु जन प्रसन्न होकर या क्रुद्ध होकर यही उपदेश देते हैं कि पका फल ही पेड़ से

तोड़कर खाना अच्छा है, पेड़ को काट डालना अपराध है ॥५११॥

धरनि धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागिहै किएँ गोड़ कि गाइ ॥

पृथ्वीरूपी गौ जब राजा के प्रजावत्सलता तथा धर्मयुक्त उत्तम चरित्ररूपी चारे को चरकर दुग्धवती होती है और जब प्रजारूपी सुन्दर बछड़े के द्वारा चोखे जानेपर पेन्हाती है तभी उत्तम और अधिक दूध मिलता है, सिर्फ पैर बाँधकर दुहने से कुछ भी दूध हाथ नहीं लगता। ॥५१२॥

चढ़े बधूरें चंग ज्यों ग्यान ज्यों सोक समाज।
करम धरम सुख संपदा त्यों जानिबे कुराज ॥

जो दशा बवंडरमें पड़ी हुई पतंगकी और शोकों के समूह में पड़े हुए विवेक की होती है वही दशा बुरे राज्य में कर्म, धर्म और सुख-सम्पत्ति की भी समझनी चाहिये। ॥५१३॥

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कृनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि ॥

जैसे खजूरकी हजारों शाखाएँ वृक्ष में बहुतेरे काँटे बना-बनाकर गिर पड़ती हैं, इसी प्रकार दुष्ट राजा भी अपनी दुष्ट नीतिसे कुचाल कर-करके संसार में बार-बार जन्मते-मरते हैं। ॥५१४॥

काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल ॥

काल ही तोपची है, पृथ्वी ही तोप है, विकराल अनीति ही बारूद है, पाप ही पलीता है और राजा ही कठोर तथा भारी गोला है ॥५१५॥

किसका राज्य अचल हो जाता है ?

भूमि रुचिर रावन सभा अंगद पद महिपाल।
धरम राम नय सीय बल अचल होत सुभ काल ॥

पृथ्वी ही रावण की सुन्दर सभा है, इसमें राजा ही अंगद का पैर है, धर्मरूपी राम और नीति रूपी सीता के बदले ही वह राजा रूपी अंगद का पैर शुभ समय में अचल हो जाता है। ॥५१६॥

प्रीति राम पद नीति रति धरम प्रतीति सुभायँ।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन कायँ ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणोंमें जिसकी प्रीति है, नीति में जो सदा रत है और धर्म में जिसका स्वाभाविक ही विश्वास है, उस राजा को प्रभुता मन, वचन और शरीर से कभी नहीं छोड़ती ॥५१७ ।

कर के कर मन के मनहिं बचन बचन गुन जानि।
भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि ॥

जिस राजाके हाथ में हाथ के गुण हों, मन में मन के गुण हों और वचन में वचनके गुण हों उस राजा को विजय, ऐश्वर्य और बुद्धिमत्ता भूलकर भी नहीं छोड़ते ॥५१८॥

गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेषु ॥

गोली, साधारण बाण और सुमन्त्रित बाण को मन में समझकर और फिर इनके क्रम को उलटकर देखो और विचार करो कि उत्तम, मध्यम और नीच राजा के वचन क्रमशः ऐसे ही होते हैं॥५१९॥

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाव।
बूड़त लखि पग डगत लखि चपरि चहूँ दिसि घाव ॥

चतुर शत्रु पानी के समान शत्रु रूपी नाव को सिर पर रखता है, परंतु उसको डूबते हुए देखकर या पैर डगमगाते हुए देखकर तुरंत ही चारों ओर से उस पर धावा कर देता है ॥५२०॥

रैअत राज समाज घर तन धन धरम सुबाहु।
सांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसइ नित नरनाहु ॥

प्रजा, राजसमाज, घर, अपना शरीर, धन, धर्म और सेना आदि को शान्त और सुयोग्य मन्त्रियों के हाथों में सौंप कर ही राजा नित्य सुख से रह सकता है ॥५२१॥

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥

मुखिया को मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने के लिये तो एक ही है; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि विवेक के साथ समस्त अंगों का पालन-पोषण करता है। ॥५२२॥

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ॥

सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान होने चाहिये और साहिब को मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की प्रीतिकी रीति को सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं। ॥ ५२३ ॥

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनी कर होइ बेगिहीं नास ॥

यदि मन्त्री, वैद्य और गुरु भय से अथवा अपने स्वार्थ की आशा से 'हाँ में 'हाँ मिलाने लगते हैं तो राज्य, धर्म और शरीर-इन तीनों का शीघ्र ही नाश हो जाता है। ॥५२४॥

रसना मन्त्री दसन जन तोष पोष निज काज।
प्रभु कर सेन पदादिका बालक राज समाज ॥

मन्त्री जीभ है और अन्य कर्मचारी दाँत है। राजकर्मचारी राजाके लिये सब अपना-अपना काम ठीक करते हैं और बदले में राजा उन सबका पोषण करता है। सेना और

पदातिजन राजा के हाथ और पैर हैं। राजा माता-पिता के समान है और सारा राज-समाज राजा का बालक है। ॥५२५॥

लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि ॥

जिस तरह काम की सरसता के अनुसार लकड़ी की चम्मच या धातु की करछुल का यथायोग्य संग्रह और त्याग किया जाता है उसी प्रकार अच्छे स्वामी भी विचार करके सब प्रकारके सेवकों तथा सखाओंका यथायोग्य संग्रह और त्याग करते हैं। ॥५२६॥

प्रभु समीप छोटे बड़े रहत निबल बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिऐ कर अँगुली अनुमान ॥

प्रभु के निकट छोटे, बड़े, निर्बल और बलवान्—सभी प्रकारके लोग रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि हाथ की अँगुलियोंसे अनुमान करके इस बात को प्रत्यक्ष देख लेना चाहिये ॥५२७॥

आज्ञाकारी सेवक स्वामी से बड़ा होता है

साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान ॥

वह सेवक स्वामी से बड़ा है, जो अपने धर्मपालन में निपुण है। भगवान् श्रीराम तो पुल बाँधकर समुद्र के पार उतरे, परंतु हनुमान जी उसी समुद्र को लाँघकर चले गये। ५२८ ॥

मूलके अनुसार बढ़नेवाला और बिना अभिमान किये सबको सुख देनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है

तुलसी भल बरतरु बढ़त निज मूलहिं अनुकुल।
सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि फलनि बिनु फूल ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि बड़ का वृक्ष उत्तम है, जो अपनी जड़ के अनुसार ही बढ़ता है और बिना ही फूले अपने पत्तों और फलों द्वारा सबको सब प्रकार से सुख देता है। ॥५२९॥

त्रिभुवनके दीप कौन है ?

सघन सगुन सधरम सगन सबल सुसाइँ महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते तिभुवन के दीप ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो पुरुष धनवान्, गुणवान्, धर्मात्मा सेवकों से युक्त, बलवान् और सुयोग्य स्वामी तथा राजा होते हुए भी अभिमानरहित होते हैं, वही तीनों लोकों के उजागर होते हैं ॥५३०॥

कीर्ति कर्म से ही होती है

तुलसी निज करतूति बिनु मुकुत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोक हरि नाम सक्यो नहिं धोइ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कोई जीव अपने पुरुषार्थ के बिना ही मुक्त हो जाता है तो उसकी कीर्ति नहीं होती। अजामिल श्रीहरि के लोक को चला गया, परंतु वह अपनी बदनामी को नहीं धो सका। ॥५३१॥

बड़ो का आश्रय भी मनुष्य को बड़ा बना देता है

बड़ो गहे ते होत बड़ ज्यों बावन कर दंड।
श्रीप्रभु के सँग सों बढ़ो गयो अखिल ब्रह्मंड ॥

बड़े के अपनाने से भी मनुष्य बड़ा हो जाता है, जैसे वामन भगवान के हाथ का दण्ड उनके साथ ही बढ़कर अखिल ब्रह्माण्ड तक पहुँच गया ॥५३२॥

कपटी दानी की दुर्गति

तुलसी दान जो देत हैं जल में हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकै जाइ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं जो लोग हाथ उठाकर जल में दान देते हैं उस दान को ग्रहण करने वाली मछली तो जीवित रहती नहीं और वह दाता भी नरक में जाता है ॥५३३॥

अपने लोगों के छोड़ देनेपर सभी वैरी हो जाते है

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु बिनु तरनि तासु रिपु होइ ॥

जिस दिन अपने ही लोग अपना साथ छोड़ देते हैं, उस दिन कोई भी हित करनेवाला नहीं रह जाता। तुलसीदासजी कहते हैं जब जल कमल का साथ छोड़ देता है, तब वही सूर्य कमल का वैरी बनकर उसे जला डालता है। ॥५३४॥

साधन से मनुष्य ऊपर उठता है और साधन बिना गिर जाता है

उरबी परि कलहीन होइ ऊपर कलाप्रधान।
तुलसी देखु कलाप गति साधन घन पहिचान ॥

मोर की पाँख जब जमीन की ओर नीचे पड़ी रहती है, तो वह कलाहीन हो जाती है और वही जब ऊपरकी ओर होती है तो कलाप्रधान हो जाती है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मोर के पाँख की गति देखो और समझो कि मेघ ही इसमें प्रधान साधन है ॥५३५॥

सज्जनो को दुष्टों का संग भी मङ्गलदायक होता है

तुलसी संगति पोच की सुजनहि होति म-दानि।

ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीनि गोहारि आनि ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सज्जन के लिए नीच की संगति भी मंगल दायिनी होती है। जैसे विष्णुरूप बने हुए बढ़ई से विवाह करनेवाली राज कन्या की पुकार सुनकर साक्षात् भगवान् विष्णु ने आकर सहायता की। ॥५३६॥

कलियुग में कुटिलताकी वृद्धि

कलि कुचालि सुभ मति हरनि सरलै दंडै चक्र।
तुलसी यह निहचय भई बाढ़ि लेति नव बक्र ॥

कलियुग की कुचाल शुभ बुद्धि को हरने वाली है, इसीलिये राजचक्र भी सरलस्वभावके साधुओंको ही दण्ड देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह निश्चय हो गया कि कलियुगमें कुटिलता नित नयी-नयी बढ़ रही है ॥ ५३७॥

आपस में मेल रखना उत्तम है

गो खग खे खग बारि खग तीनों माहिं बिसेक।
तुलसी पीवैं फिरि चलैं रहैं फिरै सँग एक ॥

पृथ्वी, आकाश और जल में रहनेवाले तीनों प्रकार के पक्षियों में एक विशेषता है तुलसीदासजी कहते हैं कि वह सब अपने-अपने दल बनाकर एक ही साथ पानी पीते हैं, चलते-फिरते हैं और रहते हैं ॥५३८॥

सब समय समतामे स्थित रहनेवाले पुरुष ही श्रेष्ठ हैं

साधन समय सुसिद्धि लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल मूल ॥

वही इस पृथ्वी पर मंगल-मूल होते हैं, जो अनुकूल साधन और अनुकूल समय तथा तुलसीदासजी कहते हैं कि इन दोनों के मूल उद्देश्य रूप सुन्दर सिद्धि को प्राप्त करके तीनों कालमें एकरस-समतायुक्त रहते हैं। ॥५३९॥

जीवन किनका सफल है ?

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ ॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वभाव से ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने जन्म लेने का लाभ पाया है, अन्यथा जगत में जन्म लेना व्यर्थ ही है॥ ५४०॥

पिता की आज्ञाका पालन सुखका मूल है

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥

जो पुरुष अनुचित-उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वह सुख और सुकीर्ति के पात्र होकर इन्द्रपुरी में निवास करते हैं। ॥५४१॥

स्त्री के लिए पतिसेवा ही कल्याणदायिनी है

<u>सोरठा</u>

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥

स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किंतु पतिसेवा करने से वह शुभ गति को प्राप्त होती है। पतिव्रता स्त्री वृन्दा का यश चारों वेद गाते हैं और आज भी वह तुलसी के रूप में श्रीहरि की प्रिया बनी हुई है ॥५४२॥

शरणागत का त्याग पाप का मूल है

दोहा

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहिं बिलोकत हानि ॥

जो शरणागत की रक्षा करने में अपना अहित सोचकर उसका त्याग कर देते हैं, वह मनुष्य पामर और पापमय हैं और उनका मुख देखने से भी हानि होती है। ॥५४३॥

तुलसी तृन जलकुल को निरबल निपट निकाज।
कै राखे कै सँग चलै बाँह गहे की लाज ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि नदी तट का तृण अत्यन्त ही निर्बल और निकम्मा होता है, परंतु कोई डूबनेवाला आदमी उसे पकड़ लेता है तो वह भी अपनी बाँह पकड़ने की

लाजके कारण या तो उस शरणागतको बचा लेता है; अथवा स्वयं ही उखड़कर उसके साथ बह जाता है ॥५४४॥

कलियुग का वर्णन

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि पर प्रीति ॥

लोगोंको सीख तो यही दी जाती है कि रामायण के अनुसार चलो, परंतु संसार में लोग अनुकरण करते हैं महाभारत का। तुलसीदास जी कहते हैं कि कलिकाल में लोगों की प्रीति कुचाल पर ही रहती है; मुझ जैसे मूर्ख की कौन सुनता है। ॥५४५॥

पात पात कै सींचिबो बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटें चतुरपन कलि डहके कहु को न ॥

अलग नमक मिलाना चाहते हैं ऐसी हालत में कहिए अपनी इस खोटी चतुराई से कलियुग में कौन नहीं ठगे गये ॥५४६॥

प्रीति सगाई सकल बिधि बनिज उपायँ अनेक।

कल बल छल कलि मल मलिन डहकत एकहि एक ॥

कलियुग के पापों से मलिन मन हुए लोग प्रीति करके नाता जोड़कर वाणिज्य आदि अनेक उपायों से सब प्रकार कल-बल-छल करके परस्पर एक दूसरे को ठगा करते हैं। ॥५४७ ॥

दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रूचि अनुहरत अचार ॥

कलि के धर्म सब दम्भयुक्त हैं, व्यवहार कपटयुक्त हैं, प्रेम स्वार्थयुक्त हैं और आचरण मनमाना है ॥५४८॥

चोर चतुर बटमार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड।
सब भच्छक परमारथी कलि सुपंथ पाषंड ॥

कलियुगमें चोर ही चतुर माने जाते हैं, लुटेरे ही खिलाड़ी गिने जाते हैं; भाँड़ और भड़ए ही राजाओं या मालिकों को प्रिय होते हैं; खान-पान का विचार त्यागकर सब कुछ खानेवाले ही महात्मा माने जाते हैं और पाखण्ड ही सन्मार्ग समझा जाता है अर्थात् सभी विपरीत हो रहा है ॥५४९॥

असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहीं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥

जो लोग अशुभ वेष बनाये रहते हैं-अशुभ अलंकार धारण करते हैं तथा खानेयोग्य और न खानेयोग्य सब कुछ खा जाते हैं-इस कलियुगमें वही मनुष्य योगी हैं, वही सिद्ध हैं और वही पूज्य हैं ॥५५०॥

<u>सोरठा</u>

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार ते बकता कलिकाल महुँ ॥

जो अपने आचरण से दूसरों का बुरा करनेवाले हैं, कलियुगमें उन्हीं का गौरव है और वही मान के योग्य हैं एवं जो मन, वचन तथा कर्म से झूठे होते हैं, वही वक्ता माने जाते हैं ॥५५१॥

<u>दोहा</u>

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥

इस कलियुगमें स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान को छोड़कर दूसरी चर्चा ही नहीं करते, किंतु वही लोभवश एक कौड़ी के लिये ब्राह्मण और गुरुजनों का घात कर डालते हैं ॥५५२॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ॥

कलियुग में शूद्रलोग ब्राह्मणों से वाद-विवाद करते हैं, और आँख दिखाकर डाँटते हुए कहते हैं कि क्या हम तुमसे कुछ कम हैं ? जो ब्रह्मको जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है' ॥५५३॥

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं बेद पुरान ॥

कलियुग में भक्त लोग मनमानी साखी, सबद, दोहा, कहानी और उपाख्यान कह-कहकर भक्ति का निरूपण करते हैं और प्रामाणिक वेद-पुराणों की निन्दा करते हैं। ॥५५४॥

श्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरिहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥

वैराग्य और ज्ञान से युक्त वेदोक्त हरिभक्ति के मार्ग को तो लोग विशेषरूप से मोह के वश में होकर छोड़ देते हैं और नये-नये मनमाने मार्गों की कल्पना करते हैं ॥५५५॥

सकल धरम बिपरीत कलि कल्पित कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार बन दुरे पुरान सुग्रन्थ ॥

कलियुग में सभी कुछ धर्म के प्रतिकूल हो गया, नए- नए करोड़ों कुमार्ग कल्पित हो गये, इससे पुण्य तो पहाड़ों में भाग गया और पुराणादि सद्ग्रन्थ वनोंमें जाकर छिप गये ॥५५६॥

धातुबाद निरुपाधि बर सद्गुरू लाभ सुमीत।
देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत ॥

कलियुग में रसायन विद्या, उपाधिरहित वरदान, सदगुरु की प्राप्ति, सच्चे मित्र और देवता के प्रत्यक्ष दर्शन, यह पाँचों बातें डर के मारे पुस्तकों में छिप गयी हैं ॥५५७॥

सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवा से मारि कलि राजत सहित समाज ॥

देवालय, तीर्थ और पवित्र पुरियों में सर्वत्र ही अत्यन्त भ्रष्टाचार और भ्रष्ट वातावरण फैल गया है। मानो उन स्थानों में कलियुग अपने सारे समाज के साथ किलेबंदी करके विराजमान रहता है ॥५५८॥

गोंड़ गवाँर नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दंड कराल ॥

कलियुग में गोंड़ और गँवार तो पृथ्वी के राजा हो रहे हैं और यवन-म्लेच्छादि बादशाह। इनकी राजनीतिमें साम, दान, भेदका प्रयोग न होकर केवल कठोर दण्ड का ही प्रयोग होता है ॥५५९॥

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागें अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि घष घर सहस डहार ॥

जैसे पहाड़ की ठोकर लगने पर मूर्ख लोग घर के सिल-लोढ़े को फोड़ डालते हैं। इस प्रकार अपने ही घरवालों को तंग करनेवाले कायर, क्रूर और कुपूत कलियुगमें सहस्रों की संख्या में घर-घर होंगे। ॥५६०॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान ॥

सत्य, अहिंसा, शौच और दान-धर्मके ये चार चरण प्रसिद्ध हैं, जिनमेंसे कलियुग में एक दान ही प्रधान रह गया है, जिस किसी भी प्रकार से दिए जाने पर दान कल्याण ही करता है ॥५६१॥

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥

यदि मनुष्य विश्वास करे तो कलियुगके समान और कोई भी युग नहीं है, क्योंकि इसमें केवल श्रीरामचन्द्र जी के निर्मल गुणसमूहों का गान करके ही मनुष्य बिना ही किसी परिश्रम के भवसागरसे तर जाता है ॥५६२॥

चाहे जो भी घट जाय, भगवान् से प्रेम नहीं घटना चाहिये

श्रवन घटहुँ पुनि दृग घटहुँ घटउ सकल बल देह।
इते घटें घटिहै कहा जौं न घटै हरिनेह ॥

कानों से चाहे कम सुनायी पड़े, आँखों की रोशनी भी चाहे घट जाय, सारे शरीर का बल भी चाहे क्षीण हो जाय; किंतु यदि श्रीहरि में प्रेम नहीं घटे तो इनके घटने से हमारा क्या घट जायगा? ॥५६३॥

कुसमय का प्रभाव

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं हमें पूछिहै कौन ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि बरसात की मौसम में कोयल यह समझकर मौन हो जाती है कि अब तो मेढक टर्रायेंगे, हमें कौन पूछेगा?॥५६४॥

श्रीरामजी के गुणों की महिमा

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि ईंधन अनल प्रचंड ॥

कलियुग के कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, दम्भ और पाखण्ड को जलाने के लिये श्रीरामचन्द्रजी के गुणसमुदाय वैसे ही हैं, जैसे ईंधनको जलानेके लिये प्रचण्ड अग्नि ॥५६५॥

कलियुग में दो ही आधार है

सोरठा

कलि पाषंड प्रचार प्रबल पाप पावँर पतित।
तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुगमें केवल पाखण्ड का प्रचार है; संसार में पाप बहुत प्रबल हो गया है, सब ओर पामर और पतित ही नजर आते हैं। ऐसी स्थितिमें दो ही आधार हैं-एक श्रीरामनाम और दूसरा देवनदी श्री गंगाजी का पवित्र जल ॥५६६॥

भगवत प्रेम ही सब मंगलों की खान है

दोहा

रामचंद्र मुख चंद्रमा चित चकोर जब होइ।
राम राज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥

जिस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के मुखचन्द्र को निरखने के लिये चित्त चकोर बन जाता है, वही समय रामराज्य की भाँति
सुहावना होता है और तभी सब काम शुभ होते हैं ॥५६७॥

बीज राम गुन गन नयन जल अंकुर पुलकालि।
सुकृती सुतन सुखेत बर बिलसत तुलसी सालि ॥

जब परम पुण्यात्मा पुरुष के निर्मल तनुरूपी सुन्दर और श्रेष्ठ खेत में श्रीरामचन्द्रजी के गुण समूह रूपी बीज बोये जाएं और प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें सींचा जाय, तुलसीदासजी कहते हैं कि तब उनमें से शुभ अंकुर उत्पन्न होते हैं और तभी उसमें धान की खेती लहराती है ॥५६८॥

तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीता राम।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीसीताराम जी के सुन्दर सगुण स्वरूप का प्रेमसहित स्मरण-ध्यान करते रहो; इससे आदि, मध्य और अन्त में सदा ही अच्छा शकुन, परम मंगल और कल्याण होगा ॥ ५६९॥

पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीता राम ॥

श्री सीताराम जी का स्मरण करते ही मनुष्य के लिए सभी सिद्धियाँ और सब पर स्वामित्व सुलभ हो जाते हैं तथा सभी तरह के स्वार्थ, पुरुषार्थ सफल होते हैं और अन्त में परमार्थ की प्राप्ति होती है। ॥५७०॥

दोहावली के दोहों की महिमा

मनिमय दोहा दीप जहँ उर घर प्रगट प्रकास।
तहँ न मोह तम भय तमी कलि कज्जली बिलास ॥

जिसके हृदयरूपी घर में इन दोहों रूपी मणिमय दीपक का प्रकाश प्रकट होगा, वहाँ मोह रूपी अन्धकार, भयरूपी

रात्रि और कलिकाल रूपी कालिमा का विलास नहीं हो सकता ॥५७१॥

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिऐ साँच।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच ॥

क्या भाषा, क्या संस्कृत, सच्चा प्रेम चाहिये। जहाँ कम्बल से ही काम चल जाता हो, वहाँ बढ़िया दुशाला लेकर क्या करना है? ॥ ५७२॥

श्री राम की दीनबन्धुता

मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एते जानिऐ राम गरीब नेवाज ॥

संसार में मणि-माणिक्य आदि महँगे है और तृण, जल तथा अन्न आदि वस्तुएं सस्ती हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि बस, इतना याद रखना चाहिये कि श्रीराम दीनों के बन्धु हैं। ॥५७३॥

॥ इति ॥